काश्मीर का सच



प्रो० बलराज मधोक

काश्मीर का सच

प्रो० बलराज मधोक

अखिल भारती

3014, चर्खेवालान, दिल्ली-110006

प्रकाशक :
अखिल भारती
3014, चर्खेवालान
दिल्ली-110006
दूरभाष :
011-2947589

मूल्य : 95.00
प्रथम संस्करण : 2001

आवरण सज्जा : ग्राफिक्स इंडिया

लेज़र टाईप सेटिंग : एडवर्ट ग्राफिक्स
543, कूचा पातीराम दूरभाष : 3212683
मुद्रक : एस. एन. प्रिंटर्स
एम-72, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

KASHMIR KA SACH by Prof. Balraj Madhok

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
1. प्रस्तावना	5
2. समस्या	9
3. समस्या की पृष्ठभूमि	14
4. काश्मीर घाटी	33
5. जम्मू क्षेत्र	53
6. लद्दाख	69
7. समाधान	78

प्रस्तावना

जम्मू, काश्मीर एवं लद्दाख राज्य विभाजन और स्वतन्त्रता से पूर्व के हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा देशी राज्य था। इसके ब्रिटिश शासक और ब्रिटिश शासित हिन्दुस्तान के साथ सम्बन्ध ब्रिटिश सरकार और महाराजा गुलाबसिंह के बीच 16 मार्च, 1846 ई० में अमृतसर में हुई सन्धि पर आधारित थे। इस सन्धि के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने गुलाबसिंह का रावी और सिन्ध नदी के बीच के सारे पहाड़ी क्षेत्र पर, लाहौर घाटी को छोड़कर, स्वतन्त्र आधिपत्य स्वीकार किया था। गुलाबसिंह ने ब्रिटिश सरकार की प्रभुसत्ता (सुपरमेसी) को स्वीकार किया था और इसके प्रतीकस्वरूप प्रतिवर्ष ब्रिटिश सरकार को एक घोड़ा, पशमीने वाली बारह भेड़ें और काश्मीरी शालों के तीन जोड़े देने का वचन दिया था।

अंग्रेजों द्वारा 15 अगस्त, 1947 को हिन्दुस्तान का विभाजन करके और मुसलमानों को पाकिस्तान नाम का अलग राज्य देकर खण्डित देश को स्वतन्त्र करने के बाद से जम्मू-काश्मीर और लद्दाख राज्य सम्बन्धी वर्तमान समस्या की शुरुआत हुई।

इस समस्या के मूल में जम्मू-काश्मीर राज्य की भौगोलिक स्थिति, जनसंख्या के सम्प्रदाय के आधार पर बँटवारे और हिन्दू, बौद्ध और मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों का भौगोलिक रेखांकन, सारे राज्य में मुसलमानों का बहुमत, परन्तु महाराजा का हिन्दू होने सम्बन्धी तथ्यों के विषय में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। इसके उदय में प्रमुख भूमिका तीन व्यक्तियों की रही है। एक थे खण्डित हिन्दुस्तान के पहले प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू, दूसरे शेख अब्दुल्ला और तीसरे थे महाराजा हरिसिंह।

अभी तक सरकारी सूत्रों और पण्डित नेहरू की नीति-रीति से प्रभावित समाचार-पत्रों और लेखकों द्वारा किये गये प्रचार से लगता था कि महाराजा हरिसिंह एक शैतान था और शेख अब्दुल्ला एक देवता और कि पं० नेहरू ने शेख अब्दुल्ला के समर्थन और सहयोग से जम्मू-काश्मीर राज्य को पाकिस्तान में जाने से बचा लिया। परन्तु हाल ही में जो नई जानकारी अधिकृत रूप से उपलब्ध हुई है, उससे यह स्पष्ट हो गया है कि इन तीनों में से वास्तव में देशभक्त और राष्ट्रवादी हरिसिंह ही था। शेख अब्दुल्ला जिसकी उर्दू में लिखी आत्मकथा–आतिशे चिनार (चिनार की आग)–हाल ही में प्रकाशित हुई है, न देशभक्त था और न राष्ट्रवादी। वह पहले

मुसलमान था, बाद में काश्मीरी था। भारतीय वह कभी भी नहीं बना। पण्डित नेहरू ने लगातार शेख अब्दुल्ला का साथ देकर और हरिसिंह की टाँगें खींचकर काश्मीर समस्या, जिस रूप में वह आज विद्यमान है, को पैदा किया।

हरिसिंह की देशभक्ति और राष्ट्र-भाव 1930 ई० में लन्दन में हुए गोल मेज सम्मेलन में उसके द्वारा दिये गये भाषण में स्पष्ट झलकते हैं। भारत के राजनीतिक भविष्य के सम्बन्ध में विचार करने के लिए बुलाये गये उस सम्मेलन में हरिसिंह देशी राज्यों के प्रमुख प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुआ था। उसने अपने संक्षिप्त भाषण में कहा था :

"यह पहला अवसर है जब भारत के देशी राज्यों के नरेश प्रत्यक्ष रूप में ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों के साथ भारत के राजनीतिक भविष्य के विषय पर विचार करने के लिए आये हैं।

...हम ब्रिटिश राज्य के मित्र हैं। ब्रिटिश राज्य के मित्र राज्यों के रूप में हम अपने ब्रिटिश सरकार के साथ सम्बन्धों को बनाये रखना चाहते हैं। परन्तु भारतीय होने के नाते हम चाहते हैं कि हमारी मातृभूमि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में आदर और बराबरी का स्थान प्राप्त करे।''

हिन्दुस्तान के सबसे बड़े और सामरिक दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण राज्य के नरेश की भारत की स्वतन्त्रता के लिए यह वकालत ब्रिटिश सरकार के लिए पूर्णतया अनपेक्षित और अरुचिकर थी। इसलिए ब्रिटिश शासकों ने उस पर दबाव डालकर उसे अपने नियन्त्रण में लाने की योजना बनाई। इस काम में शेख अब्दुल्ला, जिसे उन्हीं दिनों अपने एक विद्यार्थी के साथ अनैतिक व्यवहार करने के लिए अध्यापक की नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया था, उनका मोहरा बना। उसी ने काश्मीरी मुसलमानों में साम्प्रदायिकता और इस्लामी अलगाववाद का भाव जगाया।

पण्डित नेहरू शेख अब्दुल्ला पर क्यों लट्टू थे इसके सम्बन्ध में उनकी मुस्लिम-परस्ती, काश्मीरीपन और महाराजा हरिसिंह के प्रति वैमनस्य का भाव तो सर्वविदित है। परन्तु कुछ और तथ्य भी हैं, जो सम्भवत: दिल्ली पर उनके वंश और उनके मानस पुत्रों का शासन खत्म होने पर ही प्रकाश में लाये जा सकेंगे। कारण कुछ भी हो, एक बात निर्विवाद है कि हिन्दुस्तान की अनेक अन्य समस्याओं की तरह काश्मीर समस्या के वास्तविक जनक पण्डित नेहरू थे।

सरदार बल्लभ भाई पटेल सारी स्थिति को जानते हुए भी कुछ कर नहीं पाये क्योंकि पण्डित नेहरू ने काश्मीर राज्य उनके अधिकार-क्षेत्र से बाहर और अपने

अधिकार में रखा था।

1964 में पण्डित नेहरू के निधन के बाद उनकी भूलों को सुधारने के कई अवसर आये परन्तु वे सभी खो दिये गये। अब स्थिति यह हो गई है कि रूस जैसे देश, जिनके अपने हित भी यह माँग करते हैं कि काश्मीर पाकिस्तान में न जाए, यह समझ बैठे हैं कि भारत सरकार काश्मीर के विषय में यथार्थवादी नीति अपनाने की क्षमता ही नहीं रखती। दूसरी ओर काश्मीर के अंदर भारत विरोधी तत्त्वों की स्थिति और भी मजबूत हो चुकी है। पाकिस्तान तथा अन्य इस्लामी देशों से उन्हें हर प्रकार की सहायता मिल रही है। पाकिस्तान और चीन का गठजोड़ पूर्ववत् कायम है। दूसरी ओर भारत सरकार की काश्मीर नीति के कुप्रभाव अन्यत्र भी सामने आने लगे हैं।

काश्मीर घाटी से काश्मीरी पण्डितों को बलात् निकालने एवं काश्मीर को शेष भारत से जोड़ने वाली प्रमुख कड़ी टूट चुकी है। भारत सरकार की काश्मीर घाटी पर पकड़ लगातार कमजोर हो रही है।

पाकिस्तान का शासक वर्ग इस स्थिति से पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए प्रयत्नशील है। इसने इस्लामी आतंकवादियों के सहयोग से 'प्राकसी युद्ध'' छेड़ रहा है। कारगिल कांड उस युद्ध की एक विशेष घटना थी। फलस्वरूप जम्मू-काश्मीर का भविष्य फिर अधर में पड़ गया दीखता है।

आज स्थिति यह है कि हिन्दुस्तान के लिए काश्मीर एक समस्या बन गया है। जो गाँठ पण्डित नेहरू के हाथों से बँधी थी अब उसे मुँह से खोलना भी कठिन लगने लगा है।

परन्तु यह गाँठ खोलनी तो पड़ेगी। सारे देश की शान्ति, एकता और सुरक्षा के लिए काश्मीर की स्थिति एक बड़ा खतरा बन गई है। इसका निराकरण करना ही होगा तथा इसके भविष्य का फैसला भारत और भारत सरकार को ही करना है।

अब यह स्पष्ट हो चुका है कि काश्मीर के सम्बन्ध में नेहरू नीति बुरी तरह विफल हो चुकी है। महाराजा हरिसिंह और पण्डित नेहरू के बाद शेख अब्दुल्ला का भी निधन हो चुका है। इसलिए जम्मू-काश्मीर के सम्बन्ध में पूर्वाग्रहों, अहम् भाव और हठधर्मी से ऊपर उठकर वस्तुपरक, यथार्थवादी और राष्ट्रवादी नीति अपनाने के लिए अनुकूल स्थिति बन गई है। परन्तु दुर्भाग्य से नीति-निर्धारक

राजनेता और प्रचार माध्यम आज भी पंडित नेहरू की दूषित मानसिकता, उनके द्वारा किये गये गलत प्रचार से ग्रस्त हैं। ठीक नीति बनाने के लिए सही तथ्यों की जानकारी, उनका वस्तुपरक मूल्यांकन और खुले मस्तिष्क की आवश्यकता है।

इस पुस्तिका में मैंने जम्मू-काश्मीर सम्बन्धी आवश्यक तथ्यों को पेश करने के साथ-साथ आज के हालात में स्थिति को सम्भालने के लिए आवश्यक उपाय भी सुझाए हैं।

हिन्दुस्तान के अन्दर और बाहर की तेजी से बदलती हुई परिस्थितियों और जम्मू-काश्मीर के हाल के घटना-चक्र के परिप्रेक्ष्य में इस पुस्तक में दिये गये तथ्य और सुझाव देश के नीति-निर्धारकों और जनमत तैयार करने वाले राजनेताओं, बुद्धिजीवियों और समाचार-पत्रों से सम्बन्धित लोगों के लिए विशेष रूप से उपयोगी होंगे।

मेरा जम्मू-काश्मीर और उसकी राजनीति के साथ गत 60 वर्षों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। काश्मीर मेरी जन्मस्थली भी है और लम्बे काल तक साधना-स्थली भी रही है। काश्मीर को भारत के लिए बचाने में मेरी भी विशेष भूमिका रही है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि काश्मीर समस्या का राष्ट्रहित और काश्मीर, जम्मू तथा लद्दाख के लोगों के हितों के अनुरूप और अनुकूल हल शीघ्र निकाला जाए। हल क्या हो, उसकी दिशा मैंने प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। मैं आशा करता हूँ कि इस पर यथोचित और वस्तुपरक ढंग से विचार किया जाएगा।

—बलराज मधोक

श्रावण पूर्णिमा,
रक्षाबन्धन
अगस्त 15, 2000

समस्या

1947 में स्वतन्त्रता और विभाजन से पहले हिन्दुस्तान के मानचित्र पर 500 से अधिक देशी रियासतें बिखरी हुई थीं। इनमें सबसे बड़ी रियासत जम्मू-काश्मीर थी। इन सबने ब्रिटिश सरकार का अधिपत्य स्वीकार कर रखा था। ब्रिटिश सरकार इन राज्यों और इनके नरेशों को अपने राज्य-सिंहासन के पाये मानती थी। जब परिस्थितियों ने उसे भारत का विभाजन करके अपना बोरिया-बिस्तर उठाकर हिन्दुस्तान से चले जाने के लिए बाध्य किया तब इन देशी रियासतों पर से भी उनका आधिपत्य समाप्त हो गया। तब उसने इन रियासतों के नरेशों को सलाह दी कि वे भौगोलिक संलग्नता को ध्यान में रखते हुए खण्डित भारत अथवा पाकिस्तान में शामिल हो जाएँ। काश्मीर समस्या इस देश-विभाजन की ही एक उपज है।

काश्मीर समस्या की जड़ इस राज्य की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति और इसकी जनसंख्या का साम्प्रदायिक दृष्टि से क्षेत्रीय बँटवारा और समीकरण है। खण्डित भारत के पहले प्रधानमन्त्री ने अपनी गलत नीति और व्यवहार

से इसे और जटिल बनाया। काश्मीर के मामले में उनके व्यवहार से लगता है कि वे काश्मीरी पहले थे और भारतीय बाद में। शेख अब्दुल्ला के प्रति उनके मोह और काश्मीर नरेश महाराजा हरिसिंह के प्रति उनके वैमनस्य ने उनके चिन्तन को दूषित, और राष्ट्रहित में ठीक निर्णय लेने की क्षमता को कुण्ठित कर दिया था। इस प्रकार काश्मीर की समस्या मूलतः जम्मू-काश्मीर की भौगोलिक और साम्प्रदायिक स्थिति और पण्डित नेहरू की भूलों का परिणाम है।

अब सब लोग यह मानने लगे हैं कि यदि काश्मीर का मामला भी सरदार पटेल के हाथ में छोड़ दिया जाता तो वह इसको भी हल कर डालते और इसे स्वतन्त्र हिन्दुस्तान के लिए नासूर न बनने देते और न इसे हिन्दुस्तान की आन्तरिक और बाहरी नीतियों को राष्ट्र के हितों के प्रतिकूल प्रभावित करने देते।

पण्डित नेहरू द्वारा काश्मीर के सम्बन्ध में किया गया गोलमाल अब इतिहास का अंग बन चुका है। उनके उत्तराधिकारियों ने स्थिति को और बिगाड़ा। इन्दिरा गांधी की राजनीतिक और कूटनीतिक भूलों के कारण 1971 की भारत की पाकिस्तान पर सैनिक विजय को 1972 में हुई शिमला सन्धि ने हार में बदल दिया। इस सन्धि के द्वारा भारत में पहली बार पाकिस्तान को काश्मीर समस्या में एक पक्ष के रूप में मान्यता दी।

श्रीमती गांधी के पुत्र राजीव गांधी के सत्ता में आने पर पहले कुछ आशा जगी थी। परन्तु उन्होंने अपनी अपरिपक्वता और मनमाने तथा कायरतापूर्ण व्यवहार से उन आशाओं पर पानी फेर दिया। उनके द्वारा शरीयत और तलाकशुदा मुस्लिम महिलाओं को गुजारा भत्ता देने के प्रश्न पर मुस्लिम लीग और अपनी पार्टी और मन्त्रिमण्डल में मुस्लिम लीग के पंचमांगियों के आगे समर्पण करने से सारे देश में मुस्लिम सम्प्रदायवाद और अलगाववाद को बढ़ावा मिला। काश्मीरी मुसलमानों पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा।

अब स्थिति ऐसी बन गयी है कि काश्मीर समस्या सम्बन्धी मूल तथ्यों और कारणों को ठीक प्रकार समझना और आँकना तथा स्थिति को सम्भालने के लिए तथा इस दुष्कर गाँठ को खोलने के लिए प्रभावी और

मजबूत पग उठाना अनिवार्य हो गया है। दुर्भाग्य से न केवल राजनीतिक नेता और नीति निर्धारक अपितु भारत के अधिकांश बुद्धिजीवी पत्रकार और जनमत को प्रभावित करने वाले लोग भी काश्मीर के सम्बन्ध में बुनियादी तथ्यों से अनभिज्ञ हैं। गत अनेक दशकों से लगातार होने वाले झूठे प्रचार के कारण वे यह समझ बैठे हैं कि काश्मीरी मुसलमान अन्य मुसलमानों से भिन्न हैं और सैकुलरवाद का उत्तम उदाहरण हैं। परन्तु वास्तविक तथ्य इस धारणा के बिल्कुल विपरीत है। तथ्यों के सम्बन्ध में अनभिज्ञता अथवा पूर्वाग्रहों के कारण वे स्थिति का ठीक मूल्यांकन नहीं कर सकते और गलत मूल्यांकन के कारण उनके द्वारा बनायी गयी नीतियाँ भी गलत सिद्ध हुई हैं। तथ्यों के सम्बन्ध में ठीक जानकारी, उस जानकारी का ठीक मूल्यांकन, ठीक नीति निर्धारण के लिए अनिवार्य और आवश्यक पग हैं। गलत जानकारी के आधार पर बनायी गयी नीतियाँ सही नहीं हो सकतीं।

मुझे 1931 से ही काश्मीर की राजनीति और उसके प्रमुख मोहरों को निकट से देखने, समझने और परखने का अवसर मिला। 1947 में पाकिस्तानी आक्रान्ताओं से काश्मीर की रक्षा और रियासत का भारत में विलय के विषय में भी मैंने सक्रिय भूमिका अदा की थी। तब से लेकर आज तक मैं काश्मीर के घटनाचक्र और तेजी से बदलती हुई परिस्थिति का गहराई से अध्ययन करता आ रहा हूँ। मुझे भारत के राजनेताओं और बुद्धिजीवियों की आत्मप्रवंचना की प्रवृत्ति पर अचम्भा होता है। उनमें से कुछ तो अपनी अनभिज्ञता पर गर्व करते हैं। वे राष्ट्रवाद और सम्प्रदायवाद में अन्तर भी नहीं समझते हैं। वे इतिहास से कुछ सीखना नहीं चाहते और अपनी अयथार्थवादी नीतियों और दोहरे मापदण्डों को पंथ निरपेक्षवाद, प्रगतिवाद और गांधीवाद के नाम पर ठीक सिद्ध करने का मिथ्या आडम्बर करते हैं।

इन गलत नीतियों के कारण काश्मीर समस्या भयानक रूप धारण कर चुकी है। पाकिस्तान और उसके एजेण्ट घाटी में अपने पाँव जमा चुके हैं। काश्मीरी मुस्लिम नेता बिल्कुल अविश्वसनीय बन चुके हैं। उन सबका लक्ष्य काश्मीर घाटी को एक स्वतन्त्र इस्लामी राज्य बनाने के शेख अब्दुल्ला के स्वप्न को साकार करना दिखता है। वे यह भी प्रयत्न कर रहे हैं कि वे जम्मू

और लद्दाख को भी इस इस्लामी राज्य का अंग बना सकें। शेख अब्दुल्ला की हाल ही में प्रकाशित उर्दू में लिखित आत्मकथा आतिश-ए-चिनार से शेख अब्दुल्ला का मानस स्पष्ट रूप से सामने आ गया है। इसके बाद तो भारत के नीति-निर्धारकों के मनों में शेख अब्दुल्ला और काश्मीर के सम्बन्ध में भ्रम नहीं रहना चाहिए।

पाकिस्तान के शासक कई कारणों से काश्मीर समस्या को बनाये रखना चाहते हैं। इसके नाम पर वे पाकिस्तानी मुसलमानों में हिन्दुस्तान और हिन्दुओं के विरुद्ध जेहाद का भाव जगाकर सिन्ध, पख्तूनिस्तान और बलूचिस्तान के लोगों की पाकिस्तान से अलग होकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कायम करने की आकांक्षा को दबा सकते हैं। इसके नाम पर वे हिन्दुस्तान के विरुद्ध प्रचार कर सकते हैं और मुस्लिम देशों से आर्थिक सहायता प्राप्त कर सकते हैं। इसका बहाना बनाकर वे भारत के आन्तरिक मामलों में भी दखल दे सकते हैं। भारत की गलत नीतियों के कारण पाकिस्तान के शासक वर्ग में यह विश्वास पैदा हो गया है कि वे भारत को धोखा दे सकते हैं और देर-सवेर काश्मीर घाटी को भारत से काट सकते हैं। वे इस बात से प्रसन्न हैं कि भारत काश्मीर के विकास के लिए बहुत धन खर्च कर रहा है। वे जानते हैं कि काश्मीरी मुसलमानों की समृद्धि पाकिस्तान के लिए सहायक सिद्ध हो रही है। अनुभव से यह स्पष्ट हो गया है कि मुसलमान जितना समृद्ध होता है उतना ही उसमें मतान्धता और भारत विरोधी भाव बढ़ता है।

काश्मीर की समस्या मूलत: राजनीतिक और साम्प्रदायिक है, सामाजिक और आर्थिक नहीं। दुर्भाग्य से भारत के नीति-निर्धारक अपनी नीतियों की विफलता और काश्मीर में बार-बार पिटाई के बावजूद यह बात समझ नहीं पा रहे हैं। उनका काश्मीर समस्या का निदान शुरू से गलत रहा है। जब बीमारी की पहचान गलत होगी तो इलाज भी गलत होगा। यही कारण है कि काश्मीर समस्या की हालत 'मर्ज बढ़ता गया ज्यूँ-ज्यूँ दवा की' जैसी हो गयी है। इसलिए आवश्यक हो गया है कि काश्मीर समस्या सम्बन्धी मूल तथ्यों और कारणों को ठीक प्रकार समझा और आँका जाय और समय रहते इसका उचित और राष्ट्रहित के अनुकूल समाधान ढूँढा जाय।

वास्तव में काश्मीर समस्या मुस्लिम समस्या का ही एक अंग है। हिन्दुस्तान की समस्या यह है कि भारत के राजनेता अभी तक यह फैसला नहीं कर पाये कि खण्डित हिन्दुस्तान एक राष्ट्र-राज्य है या धर्मशाला। क्या हिन्दुस्तान एक राष्ट्र है या बहुत से राष्ट्रों का झुण्ड है। भारत के शासक न केवल दो राष्ट्र को, जिसके आधार पर सन् 1947 में देश का विभाजन हुआ था, अभी तक जीवित रखे हुए हैं अपितु उनकी नीतियाँ बहुराष्ट्र के सिद्धान्त को जन्म दे रही हैं। उन मुसलमानों, जो पाकिस्तान के पक्ष में काम करने और वोट देने के बाद खण्डित भारत में टिके रहे, के प्रति जो गलत नीति अपनायी गयी है, उसके कारण न केवल काश्मीरी मुसलमानों में अपितु सिक्खों और ईसाइयों के एक वर्ग में भी भारत का एक और विभाजन करके अपने अलग-अलग राष्ट्र बनाने की इच्छा पैदा हो गयी है।

इस प्रकार काश्मीर समस्या ने एक नया रूप ले लिया है। अब इसका प्रभाव काश्मीर घाटी के बाहर भी पड़ने लगा है। इसलिए इस समस्या की पृष्ठभूमि और इससे सम्बन्धित तथ्यों को ठीक प्रकार समझना-आँकना और इसके सम्बन्ध में यथार्थवादी और राष्ट्रवादी नीति अपनाना न केवल काश्मीर के अपितु सारे जम्मू-काश्मीर राज्य और शेष भारत के भविष्य के लिए भी अनिवार्य हो गया है।

समस्या की पृष्ठभूमि

जम्मू-काश्मीर राज्य का निर्माण 19वीं शताब्दी के मध्य में महाराजा गुलाबसिंह ने किया था। गुलाबसिंह डुग्गर क्षेत्र के जम्मू राज्य के राजवंश से था। 'बाई राज पहाड़ दे, विच जम्मू सरदारे', की डोगरी किंवदन्ती के अनुसार जम्मू इस पहाड़ी क्षेत्र के बाईस राज्यों में सबसे बड़ा राज्य था। 19वीं शताब्दी के शुरू में महाराजा रणजीतसिंह ने जम्मू को अपने राज्य में मिला लिया। उसके बाद गुलाबसिंह रणजीतसिंह की सेना में भर्ती हो गया और अपने शौर्य तथा पराक्रम के बल पर रणजीत सिंह का एक प्रमुख सेनापति बन गया। रणजीतसिंह ने जम्मू का क्षेत्र उसे जागीर में देकर उसे वहाँ के राजा की उपाधि दी। उसके बाद गुलाब सिंह रणजीतसिंह के साम्राज्य के अन्तर्गत अपने जम्मू राज्य के विस्तार में जुट गया। उसने शीघ्र ही पीरपंचाल पर्वत जो जम्मू को काश्मीर घाटी से अलग करता है, तक के सारे क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया। उसके बाद उसके विख्यात सेनापति, वजीर जोरावरसिंह ने 1834 में किश्तवाड़ और पाडर के रास्ते

लद्दाख पर आक्रमण किया और लद्दाख तथा बल्तिस्तान के क्षेत्र को भी गुलाबसिंह के राज्य में मिला दिया। इस प्रकार गुलाबसिंह के राज्य और रणजीतसिंह के साम्राज्य का विस्तार चीन और तिब्बत तक हो गया।

महाराजा रणजीतसिंह के निधन के बाद लाहौर में केशधारी सरदारों की बुर्छागर्दी शुरू हो गयी। अंग्रेजों ने उसका लाभ उठाया। 1845 ई० में पंजाब की सेना हार गयी। अंग्रेज सरकार ने युद्ध के खर्च के रूप में लाहौर दरबार से 75 लाख रुपये की माँग की। लाहौर दरबार यह रकम देने की स्थिति में नहीं था। इसलिए इसके बदले इसने रावी नदी और सिन्धु नदी के बीच का सारा पहाड़ी क्षेत्र अंग्रेजों के हवाले कर दिया। काश्मीर घाटी और गिलगित को छोड़कर यह सारा क्षेत्र उस समय गुलाबसिंह के अधिकार में था। अंग्रेज जानते थे कि वह बिना लड़े उस पर उनका अधिकार नहीं होने देगा। इसलिए उन्होंने गुलाबसिंह को पेशकश कर दी कि यदि वह 75 लाख रुपया उन्हें दे दे तो वे यह क्षेत्र उसे सौंप देंगे। गुलाब सिंह ने इसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार 1846 ई० में गुलाबसिंह और अंग्रेजों के बीच अमृतसर में हुई सन्धि के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने गुलाबसिंह को जम्मू-काश्मीर राज्य के स्वतन्त्र शासक के रूप में मान्यता दे दी। इस सन्धि से गुलाबसिंह को काश्मीर की घाटी भी मिल गयी। परन्तु लाहौर दरबार के उकसाने पर काश्मीर के सूबेदार ने गुलाबसिंह को काश्मीर सौंपने से इन्कार कर दिया। इसलिए काश्मीर पर अधिकार करने के लिए गुलाबसिंह को सैनिक कारवाई करनी पड़ी। इस प्रकार काश्मीर की घाटी भी केवल अमृतसर की सन्धि मात्र से गुलाबसिंह को नहीं मिली। इसके लिए भी उसे युद्ध करना पड़ा। बाद में उसने झेलम नदी और सिन्धु नदी के बीच का क्षेत्र जिसमें रावलपिंडी का प्रमुख नगर भी स्थित है, अंग्रेजों को वापस कर दिया और इसके बदले में जम्मू के दक्षिण में पंजाब का कुछ मैदानी क्षेत्र भी उसे मिल गया। कुछ समय बाद उसने गिलगित क्षेत्र पर भी अधिकार कर लिया। इसलिए यह कहना कि गुलाब सिंह ने पचहत्तर लाख में काश्मीर घाटी को अंग्रेजों से खरीदा, पूर्ण सत्य नहीं है। पचहत्तर लाख के बदले में अंग्रेजों ने उसे इस क्षेत्र का, जो पहले ही उसके पास था, औपचारिक रूप में राजा मान लिया।

कुछ समय के बाद गिलगित क्षेत्र से पड़ने वाले हुन्जा, नग्गर, चिलास, इश्कुमन इत्यादि राज्यों के राजाओं ने विद्रोह करके गुलाबसिंह की सेना को गिलगित से निकाल दिया। गुलाबसिंह के उत्तराधिकारी महाराज रणवीरसिंह ने कुछ वर्ष बाद भीषण संघर्ष करके यह क्षेत्र पुन: अपने राज्य में शामिल कर लिया।

गुलाबसिंह 19वीं शताब्दी के भारत का एक यशस्वी और सफल सैनिक नेता था। जिस समय सदियों पुराने राजे और नवाब ताश के पत्तों के समान बढ़ते हुए ब्रिटिश साम्राज्य के आगे धाराशायी हो रहे थे, उस समय गुलाबसिंह ने अपने रणकौशल और कूटनीति से जम्मू-काश्मीर को स्वतन्त्र राज्य के रूप में कायम रखा।

गुलाबसिंह द्वारा निर्मित यह राज्य, जो 1947 तक उसके वंश के अधिकार में रहा, एक विशाल राज्य था। उसका क्षेत्रफल 84,471 वर्ग मील था और इसकी सीमाएँ उत्तर में चीन और पूर्व में तिब्बत के साथ लगती थीं। गिलगित क्षेत्र के साथ लगने वाले पामीर क्षेत्र तक इसके साम्राज्य का विस्तार होने के बाद वह संसार के तीन महान साम्राज्यों–ब्रिटिश, रूस और चीन का मिलन-स्थल बन गया। इस कारण जम्मू-काश्मीर का सामरिक महत्त्व बहुत बढ़ गया। चितराल राज्य का राजा जिसे महत्तर कहा जाता था, भी इसके आधिपत्य को स्वीकार करता था।

यह विशाल राज्य भूगोल, भाषा और संस्कृति की दृष्टि से छ: अलग-अलग क्षेत्रों का समूह था। इसका मूल क्षेत्र और रीढ़ की हड्डी जम्मू था। यह क्षेत्र जो पंजाब के मैदानों से लेकर पीरपंचाल पर्वत तक फैला हुआ है, डोगरा लोगों और गुलाबसिंह द्वारा स्थापित डोगरा राजवंश का मूल स्थान है। इसके उत्तर-पूर्व में लद्दाख का विशाल क्षेत्र है जिसे वीर जोरावरसिंह ने 1834 में विजय किया था। लद्दाख के पश्चिम में बल्तिस्तान क्षेत्र है जिसका प्रमुख नगर असकरदु है। बल्तिस्तान के पश्चिम में पामीर और अफगानिस्तान तक फैला हुआ गिलगित क्षेत्र है। ये तीनों क्षेत्र हिमालय पर्वत के उत्तर में स्थित है और सिन्धु नदी इनके बीचोंबीच बहती है। पाँचवाँ क्षेत्र जम्मू के पश्चिम में झेलम नदी के साथ लगती हुई मीरपुर, पूंछ, मुजफराबाद की पट्टी है। यह पश्चिमी पंजाब के पोठोहार क्षेत्र के साथ

मिला हुआ पंजाबी भाषाभाषी क्षेत्र है और इन सबके बीचों-बीच हिमालय की अन्य श्रृंखलाओं से घिरी हुई काश्मीर की विख्यात घाटी है जिसे भारत का नन्दनवन और हिन्दुस्तान का मुकुट भी कहा जाता है।

इस सारे राज्य में मुसलमान बहुसंख्या में थे, परन्तु जम्मू और लद्दाख क्षेत्र हिन्दू-बौद्ध-बहुल थे और शेष चार मुस्लिम-बहुल थे।

1947 में भारत के विभाजन और देशी रियासतों के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार द्वारा घोषित योजना ने जम्मू-काश्मीर के महाराजा को असमंजस और संकट में डाल दिया। उसके राज्य के हिन्दू और बौद्ध-बहुल जम्मू और लद्दाख क्षेत्र खण्डित भारत के साथ लगते थे और उनके लोग चाहते थे कि रियासत का विलय भारत के साथ हो। काश्मीर घाटी समेत शेष चार मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों के लोग चाहते थे कि यह रियासत पाकिस्तान में शामिल हो। लॉर्ड मॉउण्टबेटन भी यही चाहता था। महाराजा का झुकाव भारत की ओर था परन्तु रियासत के भारत में शामिल होने में कई बाधाएँ थीं। सबसे बड़ी बाधा यह थी कि रियासत को शेष भारत से मिलाने वाले सभी रास्ते पाकिस्तान में खुलते थे। रावलपिण्डी और स्यालकोट तो पाकिस्तान को मिलने ही थे। सांकेतिक विभाजन के अनुसार गुरदासपुर का जिला, जिसमें पठानकोट पड़ता है, भी पाकिस्तान को दे दिया गया था। 'रेडक्लिफ अवार्ड' जिसके अनुसार गुरदासपुर जिला पठानकोट समेत रावी नदी के पूर्व का भाग भारत को दिया गया, 26 अगस्त को घोषित हुआ परन्तु रियासतों को भारत या पाकिस्तान में शामिल होने की अन्तिम तिथि 15 अगस्त दी गयी थी। उस दिन तक जम्मू-काश्मीर के महाराज के लिए कोई फैसला करना सम्भव नहीं था। दूसरी बाधा यह थी कि पण्डित नेहरू ने जम्मू-काश्मीर राज्य का मामला रियासतों सम्बन्धी मन्त्रालय जिसके प्रमुख सरदार पटेल थे, के हाथों में सौंपने के बजाय अपने हाथ में रखा था। पण्डित नेहरू का महाराजा के प्रति रवैया लगभग शत्रुतापूर्ण था, इसलिए महाराजा को अपनी किस्मत पण्डित नेहरू के हाथ में देने से डर लगता था। तीसरे, उसके अपने प्रधानमन्त्री रामचन्द्र काक समेत कुछ लोग उस पर भारत या पाकिस्तान में शामिल होने के बजाय जम्मू-काश्मीर का स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखने के लिए दबाव डाल रहे थे। इसलिए महाराजा ने 15 अगस्त, 1947 को

भारत और पाकिस्तान की नयी सरकारों के सामने यथास्थिति सन्धि करने का प्रस्ताव रखा था। पाकिस्तान ने इसे तुरन्त स्वीकार कर लिया परन्तु भारत सरकार टालमटोल करती रही।

महाराजा की उलझन को 21 अक्टूबर, 1947 को काश्मीर को बलात् हस्तगत करने के इरादे से पाकिस्तान द्वारा किये गए सैनिक आक्रमण ने दूर कर दिया। जम्मू-काश्मीर सेना के सभी मुसलमान सैनिकों और अफसरों के आक्रान्ताओं के साथ मिल जाने के कारण पाकिस्तानी आक्रान्ता तेजी से श्रीनगर की ओर बढ़ने लगे। श्रीनगर में उस समय पाकिस्तान से आये हिन्दू शरणार्थियों समेत एक लाख से अधिक हिन्दू थे। श्रीनगर के पाकिस्तानियों के हाथ में पड़ने पर उनमें से एक के भी जीवित बचने की आशा नहीं थी। महाराजा की हिन्दू सेना ने यथाशक्ति मुकाबला किया। ब्रिगेडियर राजेन्द्रसिंह ने अपना बलिदान देकर चौबीस घण्टों तक आक्रान्ताओं को उड़ी पर रोके रखा। कुछ और समय उन्होंने अपनी पाशविक जिन्सी भूख को तृप्त करने हेतु बारामूला में गँवा दिया। परन्तु 24 अक्तूबर तक स्पष्ट हो गया कि महाराजा की सेना इन्हें रोक नहीं सकेगी। इसने महाराजा को बाध्य कर दिया कि वह रियासत को भारत के साथ विलय की पेशकश करे ताकि भारत की सेना काश्मीर की सेना की सहायता के लिए आ सके।

परन्तु इस विलय-प्रस्ताव का विरोध पण्डित नेहरू की ओर से हुआ। उन्हें डर था कि काश्मीर का भारत में विलय स्वीकार करने से भारत और पाकिस्तान में युद्ध छिड़ जाएगा जिसके लिए वे तैयार नहीं थे। उन्हें श्रीनगर में घिरे हुए हिन्दुओं की रक्षा करने की अपेक्षा अपनी शान्तिदूत की ख्याति की रक्षा करने की चिन्ता अधिक थी। इस पर जम्मू-काश्मीर राज्य के तत्कालीन प्रधानमन्त्री मेहरचन्द महाजन ने तुरन्त करांची जाकर जिन्ना के सामने श्रीनगर में घिरे हिन्दुओं की प्राणरक्षा की शर्त पर विलय-प्रस्ताव रखने का फैसला किया। परन्तु ज्यों ही यह बात कहकर श्री महाजन नयी दिल्ली की वार्ता के मेज से उठे, सरदार पटेल ने हस्तक्षेप किया और उन्होंने श्री महाजन को आश्वासन दिया कि विलय स्वीकार किया जाएगा और भारत की सेना तुरन्त श्रीनगर भेजी जाएगी। इस प्रकार जम्मू-काश्मीर का भारत के साथ विलय पण्डित नेहरू के कारण नहीं बल्कि उनके बावजूद

हुआ। शेख अब्दुल्ला का इस विलय और काश्मीर की रक्षा में कोई हाथ नहीं था। वह पाकिस्तान का आक्रमण शुरू होने से पहले ही सपरिवार काश्मीर से भागकर इन्दौर अपने साले के पास चला गया था। इस निर्णायक वार्ता के समय वह दिल्ली में पण्डित नेहरू के घर में था।

इस प्रकार जम्मू-काश्मीर रियासत का भारत के साथ 26 अक्तूबर को विलय हो गया और 27 अक्तूबर प्रातः से भारत के सैनिक विमानों द्वारा श्रीनगर पहुँचने लगे। परन्तु विलय स्वीकार करने से पहले पण्डित नेहरू ने यह शर्त लगा दी कि महाराजा शासन की बागडोर शेख अब्दुल्ला के हवाले कर दें। श्रीनगर में घिरे लाखों हिन्दुओं की जान बचाने के लिए महाराजा हरिसिंह को यह कड़वा घूँट पीना पड़ा। महाराजा शेख अब्दुल्ला को बेहतर जानता था। उनका वश चलता तो वह शासन की बागडोर शेख अब्दुल्ला को हरगिज न देता। शेख अब्दुल्ला के किरदार ने महाराजा का अनुमान ठीक सिद्ध किया।

जो लोग शेख अब्दुल्ला और उसके अनुयायी काश्मीरी मुसलमानों को सैक्युलर और भारत के शेष मुसलमानों से भिन्न सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, वे शायद नहीं जानते कि अक्तूबर 1947 में जहां कहीं पाकिस्तानी आक्रान्ता पहुँचे, काश्मीरी मुसलमानों ने उनका स्वागत किया और पाकिस्तानी झण्डे फहराए। बारामूला का मकबूल शेरवानी केवल एक अपवाद निकला। उसे पाकिस्तानियों ने गोली से भून दिया। भारत की सेना के श्रीनगर पहुँचने तक लेखक ने अपने कॉलेज के विद्यार्थियों और संघ के स्वयंसेवकों की सहायता से श्रीनगर की रक्षा की। शेख अब्दुल्ला सेना के पहुँचने और श्रीनगर से खतरा टल जाने के बाद वहाँ पहुँचा। काश्मीर की रक्षा और भारत के साथ विलय के सम्बन्ध में शेख अब्दुल्ला की भूमिका के सम्बन्ध में पण्डित नेहरू और भारत के कुछ समाचार-पत्रों के गलत और झूठे प्रचार ने काश्मीर समस्या को सही परिप्रेक्ष्य में देखने और समझने में बाधा डाली है।

विलय स्वीकार होने से पहले 25 अक्तूबर को सरदार पटेल के सचिव श्री बी० पी० मेनन ने महाराजा हरिसिंह को सलाह दी कि वे श्रीनगर से जम्मू चले जाएँ ताकि वे पाकिस्तानी आक्रान्ताओं के हाथ में न पड़ सकें।

यदि हरिसिंह पाकिस्तानी आक्रान्ताओं के हाथ में पड़ जाता और वे उनसे बलात् विलय-पत्र पर हस्ताक्षर करा लेते तो सारा खेल समाप्त हो जाता। महाराजा श्रीनगर से नहीं जाना चाहता था। उसका एक प्रमाण यह भी है कि वह श्रीनगर से जम्मू जाते समय अरबों रुपयों का अपना पैतृक खजाना भी साथ नहीं ले गया। छः बड़े सन्दूकों में बन्द उस खजाने के सम्बन्ध में अब कर्णसिंह, काश्मीर सरकार और भारत सरकार के बीच कानूनी रस्साकशी हो रही है। पण्डित नेहरू और शेख अब्दुल्ला द्वारा बाद में किया गया प्रचार कि महाराजा काश्मीर से भाग गया था, सरासर गलत और अनैतिक प्रचार है। काश्मीर से शेख अब्दुल्ला भाग गया था, महाराजा हरिसिंह नहीं। हरिसिंह तो भारत सरकार की सलाह पर, जो उस समय उचित और सामयिक थी, 25 अक्तूबर रात को श्रीनगर से जम्मू गया था।

जम्मू-काश्मीर को सरदार पटेल के अधिकार-क्षेत्र से बाहर रखने से भी बड़ी भूल शेख अब्दुल्ला को न केवल काश्मीर घाटी अपितु सारी रियासत के प्रशासन की बागडोर देनी थी। यह बात 27 अक्तूबर सायं श्रीनगर में शेख अब्दुल्ला के पहले भाषण से ही स्पष्ट हो गयी। लेखक ने वह भाषण अपने कानों से सुना था। अपने एक घण्टे के भाषण में शेख ने एक बार भी भारत सरकार और भारतीय सेना, जिसके कन्धों पर सवार होकर वह श्रीनगर लौटा था और उसे सत्ता मिली थी, नाम नहीं लिया। वह अपने श्रोताओं की मजहबी भावनाओं को भड़काता रहा और उन्हें बार-बार कलमा दोहराता रहा। उसने जोर देकर कहा कि "हमने काश्मीर का ताज खाक में से उठाया है, हम हिन्दुस्तान में जाएँ या पाकिस्तान में, यह बाद का सवाल है, पहले हमने अपनी आजादी मुकम्मिल करनी है।" उसके इस एक वाक्य से ही उसके इरादे स्पष्ट हो गये। उसकी रुचि काश्मीर को अपनी स्वतन्त्र सल्तनत बनाने में थी, भारत के साथ मिलाने में नहीं।

काश्मीर घाटी में सत्ता उसके हाथ में सौंपने का कुछ औचित्य था, परन्तु उसे जम्मू और लद्दाख का भी शासक बनाने का कोई औचित्य और तर्कसंगत आधार नहीं था। उसने जम्मू के विषय में न कभी सोचा था और न वहाँ उसका कोई जनाधार ही था।

पण्डित नेहरू ने इतने पर ही बस नहीं किया। यह घोषणा करके कि काश्मीर से पाकिस्तानी आक्रान्ताओं को खदेड़ने के बाद काश्मीर के भविष्य का फैसला जनमत से किया जाएगा और बाद में पाकिस्तानी आक्रमण के मामले को संयुक्त राष्ट्रसंघ में ले जाकर उन्होंने न केवल विलय को संदिग्ध और सशर्त बना दिया अपितु उसे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के भँवर में भी डाल दिया।

इन भूलों ने शेख अब्दुल्ला को अवसर दिया कि वह एक याचक के स्थान पर आका बने और भारत सरकार को ब्लैकमेल करे। वह काश्मीरी मुसलमानों का मानस बेहतर जानता था। इसलिए उसने पण्डित नेहरू पर दबाव डालना शुरू किया कि वह जनमत में काश्मीरी मुसलमानों का मत भारत के साथ विलय के पक्ष में तभी डलवा सकता है, जब काश्मीर को शेष राज्य से भिन्न विशेष दर्जा दिया जाय। इसी दबाव के कारण भारत के संविधान में अस्थायी धारा 370 डाली गयी। भारत के विधि मन्त्री डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने यह धारा जोड़ने से इन्कार कर दिया क्योंकि एक प्रखर राष्ट्रवादी के नाते वे समझते थे कि इससे भारत का अहित होगा और काश्मीर भारत के गले में हड्डी बन जाएगा। "जहाँ समझदार लोग पाँव रखने में भी झिझकते हैं वहाँ मूर्ख लोग भागकर घुस जाते हैं" के अनुरूप राष्ट्रवादी अम्बेडकर जिस काम के लिए तैयार नहीं हुए, उसे नेहरू ने एक अन्य मन्त्री, गोपाल स्वामी आयंगर से करवाने का फैसला किया। जब इस धारा को संविधान में जोड़ने का प्रस्ताव संविधान सभा में रखा गया तब अधिकांश सदस्यों ने इसका विरोध किया। उनके विरोध को शान्त करने के लिए श्री आयंगर को सदन को यह आश्वासन देना पड़ा कि यह धारा अस्थायी होगी और शीघ्र ही संविधान से निकाल दी जाएगी। परन्तु शैतान की आँत की तरह यह धारा 50 वर्षों में भी नहीं हटाई गयी।

भारतीय सेना ने 7 नवम्बर तक सारी काश्मीर घाटी से पाकिस्तानी आक्रान्ताओं को खदेड़ दिया। उसके बाद उसे अपना ध्यान अन्य क्षेत्रों की ओर केन्द्रित करना चाहिए था। पाकिस्तान के साथ लगने वाले मीरपुर, कोटली और पूँछ के नगरों पर पाकिस्तानियों का दबाव बढ़ रहा था। उनमें हजारों स्थानीय हिन्दू और पाकिस्तान से आए हिन्दू शरणार्थी घिरे हुए थे।

लद्दाख क्षेत्र पर भी पाकिस्तानी आक्रान्ताओं का दबाव बढ़ रहा था। वहाँ पर रियासत के सैनिकों की संख्या बहुत कम थी और उनका गोला-बारूद भी प्रायः खत्म हो चुका था। इसलिए आवश्यक था कि भारतीय सेना की टुकड़ियाँ इन नगरों और क्षेत्रों की रक्षा के लिए भेजी जातीं।

जब लेखक ने जम्मू क्षेत्र में भारतीय सेना के प्रमुख ब्रिगेडियर परांजपे का ध्यान मीरपुर और कोटली की भयानक स्थिति की ओर खींचा और उससे सेना की टुकड़ियाँ वहाँ भेजने के लिए प्रार्थना की तो उसने बताया कि पण्डित नेहरू का आदेश है कि भारतीय सेना वहीं भेजी जाय जहाँ शेख अब्दुल्ला कहे। इसलिए शेख अब्दुल्ला के आदेश के बिना भारतीय सेना को कहीं भेजना सम्भव नहीं। जब मैंने उसे बताया कि शेख की हिन्दुओं को बचाने में कोई रुचि नहीं, तब ब्रिगेडियर परांजपे ने मुझे अपनी बात पण्डित नेहरू को कहने का सुझाव दिया। उसने मुझे बताया कि पण्डित नेहरू 15 नवम्बर को जम्मू आयेंगे।

15 नवम्बर को मैं जम्मू के हवाई अड्डे पर पण्डित नेहरू से मिला, उन्हें मीरपुर और कोटली की स्थिति बतायी और भारतीय सेना को वहाँ भेजने का आग्रह किया। पण्डित नेहरू के साथ मेरी यह पहली भेंट थी। मुझे बड़ा आघात लगा जब पण्डित नेहरू ने मेरी पूरी बात सुनने से पहले ही आवेश में कहा कि "शेख अब्दुल्ला से बात करो।" इस प्रकार मेरा पण्डित नेहरू से मिलना व्यर्थ रहा।

सैनिक सहायता के अभाव में 20 नवम्बर को मीरपुर का पतन हो गया और मीरपुर के बीस सहस्त्र हिन्दू निवासियों में से गिने-चुने कुछ ही हिन्दू बचकर जम्मू आ सके। उसके बाद कोटली, देवा, बटाला का पतन हुआ और पाकिस्तानी आक्रान्ता जम्मू की ओर बढ़ने लगे।

इसी बीच न्यायमूर्ति कुँवर दिलीपसिंह भारत के काश्मीर के लिए एजेण्ट जनरल बनकर जम्मू आये। पण्डित प्रेमनाथ डोगरा और मैं उन्हें मिले और उन्हें सारी स्थिति बताई। उन्होंने हमें बताया कि वे सारी स्थिति समझते हैं परन्तु कठिनाई यह है कि पण्डित नेहरू चाहते हैं कि वे शेख अब्दुल्ला की इच्छानुसार काम करें जबकि उनका अपना अनुभव बताता है कि शेख अब्दुल्ला को भारत के हितों की कतई चिन्ता नहीं है। उन्होंने हमें बताया

कि वे दिल्ली जाकर पण्डित नेहरू को सारी स्थिति बताएँगे। यदि पण्डित नेहरू ने उन्हें शेख पर अंकुश लगाने की छूट दी तब वे जम्मू लौटेंगे अन्यथा त्यागपत्र दे देंगे। उन्होंने बल देकर कहा कि मैं यहाँ चार हजार मासिक वेतन के लिए नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान के हितों की रक्षा के लिए आया हूँ। यदि मैं देश के हितों की रक्षा नहीं कर सकता तो मुझे यह बड़ा वेतन नहीं चाहिए। वे दिल्ली से लौटे नहीं। उन्होंने राष्ट्रहित के लिए ओहदे और इतने बड़े वेतन पर लात मार दी। जस्टिस दिलीपसिंह, डॉ० अम्बेडकर और सरदार पटेल सच्चे देशभक्त थे। उनके मुकाबले में पण्डित नेहरू अब्दुल्ला-भक्त अधिक थे और देश-भक्त कम। परन्तु यह भाग्य की विडम्बना और भारत का दुर्भाग्य था कि देश की बागडोर नेहरू के हाथ में थी और देश-भक्त अपने को असहाय महसूस कर रहे थे।

लगभग यही स्थिति महाराजा हरिसिंह की थी। वह भी देशभक्त था। परन्तु उसके पर कट चुके थे। वह कुछ कर नहीं पा रहा था। उसे यह भी लग रहा था कि भारत के साथ रियासत का विलय भी संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा खटाई में डाल दिया गया है। उसने अपने हृदय की व्यथा और स्थिति से निबटने के लिए कुछ सुझाव 31 जनवरी, 1948 को एक गुप्त पत्र के द्वारा सरदार पटेल तक पहुँचाये थे। उस पत्र से जम्मू-काश्मीर समस्या के विकास पर बहुत प्रकाश पड़ता है और काश्मीर समस्या के आज के रूप को समझने और आँकने में सहायता मिलती है।

जम्मू-काश्मीर राज्य की राजनैतिक और सैनिक स्थिति पर प्रकाश डालने के बाद महाराजा हरिसिंह ने उस ऐतिहासिक पत्र में लिखा–

"ऊपर बताई गई स्थिति के परिप्रेक्ष्य में मेरे मन में विचार उठते हैं कि मैं इसके सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया आपके सामने स्पष्ट रूप में रख दूँ। कभी-कभी मुझे लगता है कि बेहतर होगा कि मैं अपनी रियासत के भारत के साथ विलय को समाप्त कर दूँ। भारत सरकार ने रियासत के विलय को अभी तक अन्तिम रूप में स्वीकार नहीं किया है। यदि यह रियासत की उस धरती जिस पर पाकिस्तान ने बलात् अधिकार कर लिया है, को मुक्त नहीं कर सकती और राष्ट्र संघ के जनमत सम्बन्धी प्रस्ताव को कार्यरूप देने की सूरत में रियासत को पाकिस्तान के हवाले करती है तब रियासत के भारत

के साथ विलय के साथ बँधे रहने का कोई औचित्य नहीं है। इस समय शायद पाकिस्तान से बात करनी लाभप्रद हो। परन्तु अन्ततोगत्वा पाकिस्तान में मिलने से न मेरा राज रहेगा और न रियासत में कोई हिन्दू और सिक्ख बचेगा। दूसरा विकल्प यह है कि विलय का प्रस्ताव वापिस ले लूँ। ऐसा करने से संयुक्त राष्ट्र संघ का काश्मीर के मामले में हस्तक्षेप अपने आप समाप्त हो जायेगा क्योंकि यदि विलय समाप्त कर दिया जाता है तो भारत सरकार का मेरे राज्य के विषय में कुछ कहने-करने का अधिकार स्वत: खत्म हो जायेगा। इसका परिणाम यह होगा कि रियासत विलय के पूर्व की स्थिति में आ जायेगी। उस स्थिति की कठिनाई यह होगी कि तब काश्मीर में भारत की सेना नहीं रह सकेगी। जो भारतीय सैनिक रहेंगे वे स्वयंसेवी सहयोगी के रूप में रहेंगे। इस हालत में मैं अपनी सेना और भारतीय सेना के स्वयंसेवकों का नेतृत्व सम्भालने को तैयार हूँ। मुझे युद्ध का अनुभव है, अपनी वर्तमान असहाय स्थिति से मैं अपनी धरती व प्रजा की रक्षा के लिए लड़ते हुए मरना बेहतर समझता हूँ।

"जहाँ तक आन्तरिक राजनीतिक स्थिति का प्रश्न है, मैं अपने राज्य का संवैधानिक प्रमुख रहने को तैयार हूँ। परन्तु मैं नेशनल कान्फ्रेंस के नेताओं के काम से सन्तुष्ट नहीं हूँ। उन्हें हिन्दू-सिक्खों का ही नहीं अपितु बहुत से मुसलमानों का भी विश्वास प्राप्त नहीं है। इसलिए आवश्यक है कि कुछ सुरक्षित अधिकार मेरे हाथ में रहें। मैं यह भी चाहूँगा कि मैं अपनी मर्जी का दीवान नियुक्त कर सकूँ। वह राज्य के मंत्रिमंडल के सदस्य और संभव हो तो इसके अध्यक्ष के रूप में काम करें।

"मेरे सामने एक अन्य विकल्प यह है कि मैं राजा के नाते अपने संवैधानिक अधिकार ना छोड़ते हुए रियासत के बाहर जाकर रहूँ ताकि मेरी प्रजा को मुझ से कुछ अपेक्षा ना रहे। मैं यह समझ सकता हूँ कि जिस प्रकार श्री मेनन की सलाह से मेरे काश्मीर से आने की भी कुछ लोगों ने यह कहकर आलोचना की थी कि मैं काश्मीर से भाग आया, कुछ लोग यह आलोचना करेंगे कि मैं उन्हें उनके रहम पर छोड़कर जम्मू से बाहर चला गया। परंतु केवल आलोचना के डर से ऐसी जगह बने रहना, जहाँ कोई कुछ नहीं कर सकता, मुझे ठीक नहीं लगता।

"तीसरा विकल्प यह है कि भारत सरकार सैनिक-क्षेत्र में अपनी जिम्मेदारी को प्रामाणिकता के साथ निभाए और पूरी शक्ति लगाकर राज्य से पाकिस्तानी आक्रांताओं और विद्रोहियों का सफाया करे। यह समझ कर चलना चाहिए कि काश्मीर के मामले में सैनिक दृष्टि से पाकिस्तान बेहतर स्थिति में है। ज्योंही बर्फ पिघलेगी यह काश्मीर घाटी पर सब तरफ से हल्ला बोलेगा, और लद्दाख को भी अपने अधिकार में ले लेगा। इसलिए आवश्यक है कि भारत सरकार सैनिक स्तर पर प्रभावी ढंग से सक्रिय हो। अन्यथा मुझे पहले दो विकल्पों में से एक को अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ेगा।''

इस पत्र का तत्काल कुछ प्रभाव पड़ा। लद्दाख को बचाने के लिए प्रभावी प्रयास किया गया। परंतु मीरपुर, मुजफराबाद, गिलगित और बलतिस्तान क्षेत्रों से पाकिस्तानियों को खदेड़ने के लिए कोई विशेष पग नहीं उठाए गए। केवल बलतिस्तान का कारगिल नगर और कारगिल तहसील बचाए जा सके।

बहुदा प्रश्न पूछा जाता है कि गिलगित और बलतिस्तान की बात तो दूर रही, भारतीय सेना मीरपुर-मुजफराबाद क्षेत्र जिसे अब पाकिस्तान ने 'आजाद काश्मीर' का नाम दे रखा है, को भी क्यों मुक्त नहीं करा सकी। वास्तविकता यह है कि भारतीय सेना इस क्षेत्र को मुक्त कर सकती थी परंतु उसे ऐसा करने नहीं दिया गया। इस मामले में शेख अब्दुल्ला बदनियत था। वह काश्मीर घाटी के अतिरिक्त किसी मुस्लिम-बहुल क्षेत्र को पाकिस्तान में जाने से रोकना नहीं चाहता था। पंडित नेहरू आपराधिक मानसिकता से ग्रस्त थे। उन्होंने भारत का विभाजन हिन्दु-मुसलमान के आधार पर स्वीकार किया था। वे मानसिक रूप से उसी आधार पर जम्मू-काश्मीर राज्य के बंटवारे के लिए भी तैयार थे। वे काश्मीर घाटी को अपनी कश्मीरियत के कारण भारत के पास रखना चाहते थे और शेख अब्दुल्ला इसे व्यक्तिगत कारणों से पाकिस्तान से अलग अपने अधिकार में रखना चाहता था। काश्मीर के मामले में पंडित नेहरू भी काश्मीरी पहले थे और भारतीय बाद में। इसलिए वे भी काश्मीर घाटी को छोड़कर जम्मू-काश्मीर-राज्य के अन्य मुस्लिम-बहुल-क्षेत्रों को पाकिस्तान से मुक्त करने के लिए उत्सुक नहीं थे। संभवतः इसी कारण उन्हें मुक्त कराए बिना

उन्होंने 1 जनवरी 1949 को एकतरफा युद्ध बंदी की घोषणा कर दी।

युद्धबंदी से जम्मू-काश्मीर राज्य दो भागों में बंट गया। काश्मीर घाटी तथा पुंछ नगर और इसके आस-पास का कुछ क्षेत्र और कारगिल को छोड़कर सभी मुस्लिम-बहुल क्षेत्र पाकिस्तान के अधिकार में चले गये। हिन्दुस्तान के अधिकार में केवल जम्मू, लद्दाख और काश्मीर घाटी रह गये। इन तीन क्षेत्रों में जम्मू हिन्दु-बहुल और लद्दाख बौद्ध-बहुल है। इनके लोग हर हालत में भारत में रहना चाहते हैं। केवल काश्मीर घाटी और इसके साथ लगने वाला उड़ी-टीटवाल की छोटी-सी पंजाबी भाषा-भाषी पट्टी ही एकमात्र मुस्लिम-बहुल क्षेत्र है जो अब भारत के पास है। उड़ी-टीटवाल पट्टी काश्मीर घाटी को राज्य के पाक अधिकृत भाग से काटती है।

जो क्षेत्र पाकिस्तान के अवैध अधिकार में है उसके वापिस मिलने की संभावना नगण्य है। पण्डित नेहरू और श्रीमती गांधी ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में पाकिस्तान को कई बार सुझाव दिया था कि वह युद्धबन्दी रेखा को भारत और पाकिस्तान के बीच वैध अन्तर्राष्ट्रीय सीमा मान ले परन्तु पाकिस्तान इन सुझावों को लगातार ठुकराता रहा है। उसको विश्वास है कि वह देर या सवेर मुस्लिम-बहुल काश्मीर घाटी को भी भारत से छीन लेगा। इसके लिए उसने अपना सैनिक और कूटनीतिक दबाव लगातार बनाये रखा है। सैनिक विफलताओं के बावजूद यह अपने लक्ष्य के निकट पहुँच रहा है। इस दिशा में इसकी सबसे बड़ी सफलता 1972 की शिमला सन्धि है। 1971 के युद्ध में पाकिस्तान बुरी तरह पिट गया था। उसके 93,000 सैनिक भारत के पास युद्धबन्दी थे और पश्चिमी पाकिस्तान का 5 हजार वर्ग मील क्षेत्र भारतीय सेना के अधिकार में था। भारत उस समय इस स्थिति में था कि वह काश्मीर के मामले में पाकिस्तान को दो-टूक फैसला करने पर बाध्य करता। परन्तु ऐसा करने के बजाय इसने शिमला सन्धि में पहली बार पाकिस्तान को काश्मीर के मामले में एक पक्ष के रूप में मान्यता दी। तब तक राष्ट्र संघ और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत का यह कहना था कि काश्मीर का मामला भारत का आन्तरिक मामला है जिसमें पाकिस्तान का कोई दखल नहीं। भारत ने पाक अधिकृत क्षेत्र को वापिस लिये बिना भारतीय सेना द्वारा विजित पाकिस्तान की भूमि खाली कर दी और युद्धबन्दी

छोड़ दिये। इस प्रकार 1971 की युद्ध क्षेत्र की जीत शिमला सन्धि द्वारा भारत की राजनीतिक और कूटनीतिक हार में बदल गयी। इसीलिए शिमला सन्धि को भारतीय जनता और भारतीय सेना के साथ सबसे बड़ा विश्वासघात कहा जाता है।

इस सारे घटनाचक्र और भारत सरकार की भूलों का यह परिणाम है कि पाकिस्तान और इसके एजेण्ट काश्मीर के मामले में पहिले से कहीं अधिक आश्वस्त दीखते हैं। उन्होंने न केवल काश्मीर घाटी अपितु जम्मू और लद्दाख को भी भारत से छीनने के लिए अपने प्रयास तेज कर दिये हैं। जम्मू-काश्मीर राज्य और विशेष रूप में काश्मीर घाटी की हाल की घटनाएँ जिन्होंने वहाँ के हिन्दू अल्पमतों को सामूहिक रूप में घाटी से पलायन के लिए विवश कर दिया है, इन प्रयासों का ही परिणाम है। काश्मीर घाटी अब छोटा पाकिस्तान बन चुकी है। उसका पूरा इस्लामीकरण कर दिया गया है। जम्मू और लद्दाख का भी इस्लामीकरण किया जा रहा है। काश्मीर के एक नेता मौलाना सुहरावर्दी ने तो काश्मीर की विधान परिषद् में यहाँ तक भी कह दिया है कि जम्मू-काश्मीर के भारत के साथ विलय का समर्थन करने का उनकी पार्टी का उद्देश्य काश्मीर घाटी को आधार बनाकर सारे खण्डित भारत का इस्लामीकरण करना है। इस प्रकार अब काश्मीर समस्या का रूप ही बदल गया है। पाकिस्तान अधिकृत क्षेत्र की मुक्ति का प्रश्न गौण हो गया है और काश्मीर घाटी ही नहीं वरन् जम्मू और लद्दाख को भी पाकिस्तान के हाथ में पड़ने से बचाने का प्रश्न प्रमुख हो गया है।

ऊपर दी गई पृष्ठभूमि और जम्मू-काश्मीर तथा शेष भारत और पाकिस्तान के अन्दर तथा बाहर घटने वाले घटना-चक्र के कारण भारत सरकार की काश्मीर नीति पर पुनर्विचार करना अनिवार्य हो गया है।

इन हालात में यह और भी आवश्यक हो गया है कि जम्मू-काश्मीर राज्य और विशेष रूप में इसके काश्मीर घाटी, जम्मू और लद्दाख क्षेत्रों के विषय में तथ्यपूर्ण जानकारी प्राप्त की जाये। ठीक तथ्यों के आधार पर ही इनके सम्बन्ध में चिन्तन और नीतियों को ठीक दिशा दी जा सकती है।

1972 की शिमला सन्धि के पश्चात् युद्धबन्दी रेखा को 'लाइन ऑफ कंट्रोल' अथवा नियन्त्रण रेखा का नाम दे दिया गया। नाम कुछ भी हो, यह

रेखा जम्मू-काश्मीर को दो भागों में बाँटती है। भारत इसे स्थायी रूप देना चाहता था परंतु पाकिस्तान काश्मीर घाटी को भी अपने अधिकार में लाना चाहता है। इसलिये वह इन्द्रागांधी का सुझाव मानने को तैयार नहीं था। भुट्टो इन्द्रा गांधी को इसे मानने के सम्बन्ध में मौखिक आश्वासन तो दे आया परन्तु युद्ध बंदियों के छूटने और भारत द्वारा पाकिस्तान का क्षेत्र खाली करने के बाद अपनी बात से मुकर गया।

इसके बाद अफगानिस्तान में उलझ जाने के कारण कुछ समय तक तो पाकिस्तान चुप रहा परन्तु उसके एजेंट काश्मीर घाटी में सक्रिय रहे। 1988 में अफगानिस्तान से रूसी सेना के निकलने के बाद पाकिस्तान ने फिर काश्मीर घाटी को हथियाने और नियंत्रण रेखा बदलने के प्रयत्न शुरू कर दिये। इस हेतु उसने अमरीका द्वारा अफगाानिस्तान में रूस के विरूद्ध इस्तेमाल करने के लिए दिए गए शस्त्रों और रूस के विरूद्ध लड़ने के लिए तैयार किए गए अफगान तथा अन्य देशों के इस्लामी जेहादियों का मुहँ काश्मीर की ओर मोड़ने का फैसला किया। इस संबंद्ध में पाकिस्तान के सैनिक तानाशाह जनरल जिया ने एक योजना बनाई जिसे 'टोपाक योजना' का नाम दिया गया। इस पर 1988 में ही अमल शुरू हो गया।

इस योजना के पहले चरण में काश्मीर के प्रशासन पर पाक प्रस्त तत्त्वों की पकड़ मजबूत करना काश्मीर घाटी से सारे हिंदुओं को निकालना और भारत के विरूद्ध व्यापक विद्रोह का भाव पैदा करने के कार्यक्रम शामिल थे। 1989 में नई दिल्ली में सत्ता परिवर्तन, वी0 पी0 सिंह द्वारा भाजपा की सहायता से नई सरकार बनाने और मुफ्ती मोहम्मद सईद को जिसने काश्मीर में कांग्रेस के नेता के रूप में 1986 के हिंदू विरोधी दंगों में प्रमंख भूमिका अदा की थी, गृहमंत्री बनाने से काश्मीर में पाकिस्तान की योजना को कार्य रूप देने में सहायता मिली। मई 1990 में जगमोहन को काश्मीर के राज्यपाल के पद से हटाने से स्थिति और बिगड़ी और 90 के अन्त तक घाटी से वहाँ के लाखों मूल हिंदू निवासी बलात् निकाल दिये गये।

इसके बाद इस योजना का दूसरा चरण शुरू हुआ इसके अन्तर्गत घाटी के काश्मीरी मुस्लिम युवकों को पाकिस्तान में सैनिक प्रशिक्षण देकर काश्मीर में भेजना और भारत के विरूद्ध "प्रौक्सी वार'' यानि प्रछन्न युद्ध शुरू

किया गया। जब पाकिस्तान ने यह देखा कि काश्मीरी भारत के सैनिक दबाव के आगे झुकने लगे हैं तो उसने बड़ी संख्या में विदेशी और भाड़े के आतंकवादी और जेहादी काश्मीर में भेजने शुरू किये। भारतीय सुरक्षा दलों का घाटी में दबाव कम करने के लिए इन आतंकवादियों ने घाटी के साथ लगने वाले पंचाल पर्वत के उस पार जम्मू क्षेत्र में भी अपनी गतिविधियाँ शुरू कर दीं और वहाँ से भी हिंदुओं को योजनाबद्ध ढंग से निकालना शुरू किया।

इस बीच दिल्ली में नरसिंह राव की कांग्रेस सरकार के 1996 में पतन के बाद केन्द्र में मिली जुली सरकारों का दौर शुरू हुआ देवगौड़ा और गुजराल की सरकारों के काल में काश्मीर में यथा स्थिति बनी रही और फारूख अब्दुल्ला दोहरा खेल खेलता रहा।

1998 में वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा की मिली-जुली सरकार बनने और मई 1998 में पहले भारत और बाद में पाकिस्तान द्वारा परमाणु विस्फोट करने से एक नई स्थिति पैदा हो गई। भारत और पाकिस्तान के बीच अणु युद्ध की संभावना से विचलित होकर अमरीका ने भारत और पाकिस्तान की सरकारों पर काश्मीर समस्या को शांति पूर्ण ढंग से हल करने के लिए दबाव डालना शुरू किया। सोवियत संघ के विघटन के कारण रूस की शक्ति क्षीण हो गयी और अमरीका का प्रभाव और दबाव बहुत बढ़ गया। श्री वाजपेयी की 1999 की लाहौर यात्रा और लाहौर घोषणा इसी का परिणाम थी।

परंतु पाकिस्तान की सेना का नया प्रमुख जनरल मुशर्रफ काश्मीर में पाकिस्तान की टोपाक योजना के अंतर्गत बढ़ते प्रभाव को खोने को तैयार नहीं था। इसलिए उसने टोपाक योजना के तीसरे चरण के कार्यक्रम के अंतर्गत काश्मीर में पाकिस्तान के सीधे सैनिक हस्तक्षेप की योजना को कार्यरूप देना शुरू कर दिया। कारगिल क्षेत्र में पाकिस्तान द्वारा नियंत्रण रेखा पार करके भारतीय क्षेत्र का अतिक्रमण उसका अंग था इस पर 'प्रोक्सी वार' के खुले युद्ध का रूप लेने की संभावना बढ़ गई। कारगिल कांड 'प्रोक्सी वार' की एक घटना मात्र थी इसे अलग युद्ध नहीं कहा जा सकता। इसको जीतने का प्रभावी उपाय पाकिस्तान पर वहाँ चोट करना था जहाँ सामरिक स्थिति भारत के अनुकूल हो। नियंत्रण-रेखा और पाक अधिकृत क्षेत्र में

सामरिक स्थिति पाकिस्तान के अनुकूल है। परंतु अमरीका युद्ध के विस्तार को रोकना चाहता था इसलिए राष्ट्रपति क्लिंटन के दबाव पर भारत ने अनुकूल स्थान पर पाकिस्तान पर चोट करने का विचार छोड़ा और पाकिस्तान ने अपनी सेना को नियंत्रण रेखा पर वापिस बुलाने का फैसला किया। परंतु पाकिस्तानी सेना को नियंत्रण रेखा की ओर धकेलने और अपना क्षेत्र वापिस लेने में प्रमुख भूमिका भारतीय सेना ने अदा की। भारतीय जवानों और अधिकारियों ने अपने शौर्य और देश के लिए बड़ी संख्या में आत्मउत्सर्ग करके देश के सैनिक इतिहास में एक नया गौरवपूर्ण अध्याय जोड़ा।

इस प्रकार 1999 के मध्य में एक नई स्थिति पैदा हो गई। पाकिस्तान ने नियंत्रण रेखा का आदर करने और इसका अतिक्रमण ना करने की घोषणा की और अमरीका तथा उसके साथी देशों ने नियंत्रण रेखा को व्यावाहरिक रूप में भारत और पाकिस्तान के बीच अंतर्राष्ट्रीय सीमा की मान्यता दे दी। पाकिस्तान में सैनिक क्रांति के द्वारा जनरल मुर्शरफ द्वारा प्रधानमंत्री नवाज शरीफ की सरकार को हटाकर स्वयं पाकिस्तान का सैनिक तानाशाह बन जाने से अमरीका और इसके मित्र देशों का झुकाव भारत की ओर बढ़ने लगा। 2000 के शुरू में राष्ट्रपति क्लिंटन की भारत यात्रा से स्थिति और भी स्पष्ट हो गयी। उसने यह घोषणा करके कि काश्मीर में जनमत का प्रश्न नहीं, भारत की स्थिति और मजबूत कर दी।

इस प्रकार 1 जनवरी 1949 को पण्डित नेहरू की एकतरफा युद्धबंदी की योजना के फलस्वरूप जम्मू-काश्मीर के विभाजन को सन् 2000 में अंतर्राष्ट्रीय मान्यता मिल गयी। वैसे तो 1972 की शिमला संधि के द्वारा पहले ही भारत ने जम्मू-काश्मीर राज्य के पाक अधिकृत क्षेत्र पर अपना दावा छोड़ दिया था और पाकिस्तान ने उसे पूरी तरह पाकिस्तान में मिला लिया था। परंतु अमरीका और उसके मित्र देशों ने उसे औपचारिक मान्यता पहली बार सन् 2000 में दी। कारगिल कांड का यह महत्त्वपूर्ण फलितार्थ सिद्ध हुआ।

भारत के कुछ राजनेता अब भी पाक अधिकृत क्षेत्र पर भारत के कानूनी अधिकार की बात करते रहते हैं। ऐसा कहना गलत नहीं है। परंतु

इस बात को दोहराते रहने का कोई लाभ नहीं है। अब इस पाक अधिकृत क्षेत्र जिसमें गिलगित, कारगिल, द्रास की पट्टी छोड़कर सारा बलतिस्तान और उड़ी टीटवाल की पंजाबी भाषा-भाषी पट्टी छोड़कर सारा पंजाबी भाषा-भाषी क्षेत्र जिसे पाकिस्तान अब 'आजाद काश्मीर' कहता है और जिसका क्षेत्रफल 30000 वर्गमील से अधिक है का भविष्य अब पाकिस्तान के साथ जुड़ चुका है। इसके एक लाख के करीब हिंदू नागरिकों में से अधिकांश को तलवार के घाट उतार दिया गया है और शेष को या बलात् मुसलमान बना लिया गया है और या शरणार्थी बनाकर भारत में धकेल दिया गया है। भारत में विलय के बाद जम्मू-काश्मीर राज्य के इस भाग में हुआ हिंदुओं के इस नरसंहार पर भारत की तथाकथित सैक्युलर सरकार और सैक्युलर राजनेताओं तथा लेखकों और मीडिया द्वारा जिस प्रकार पर्दा डाला गया और भारत की जनता को उससे अनभिज्ञ रखा गया वह बड़ी लज्जा और धिक्कार की बात है। इस नरसंहार में शेख अब्दुल्ला और उसके संरक्षक पण्डित नेहरू की भूमिका अधिक निंदनीय है। जम्मू में कुछ काश्मीरी टाँगे वालों की हत्या की बात न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र संघ की बैठकों में भी कही गयी परंतु इस क्षेत्र के पचास हजार से अधिक हिंदुओं की हत्या की हवा तक भी नहीं निकाली गयी। यह भारत के विकृत सैक्युलरवाद का घृणित स्वरूप है।

इस पाक अधिकृत क्षेत्र के भविष्य का फैसला अब पाकिस्तान के भविष्य की तरह युद्ध से होगा इस बात को भारत सरकार और जनता को भली प्रकार समझ लेना चाहिए। वह युद्ध पंजाब और सिन्ध में लड़ा जाएगा, इस क्षेत्र में नहीं। सामरिक दृष्टि से पाकिस्तान ने इस क्षेत्र की पूरी किला बंदी कर रखी है। उसने सारा वर्ष खुली रहने वाली सड़क से इस क्षेत्र को पाकिस्तान से जोड़ दिया है और वहां सामरिक महत्त्व की सड़कों, छावनियों और हवाई अड्डों का जाल बिछा रखा है। इसलिए वहां पाकिस्तान के साथ लड़ना सामरिक दृष्टि से भारत के हित में नहीं है।

जम्मू-काश्मीर के इस भाग के भारत के हाथ से निकल जाने के बाद भारत को अपना ध्यान जो भाग इसके कानूनी और वास्तविक अधिकार में है पर केंद्रित करना चाहिए था और उसे शेष भारत से पूरी तरह मिलाने

और उसके पुर्नगठन की दिशा में आवश्यक कदम उठाने चाहिएं थे। यह काम भारत ने गत् पचास वर्षों में नहीं किया। दूसरी ओर पाकिस्तान और इसके एजेंट इस क्षेत्र पर, विशेष रूप में काश्मीर घाटी पर अपनी आँखें लगाए रखे और इसे भी हथियाने के लिए प्रयत्नशील हैं। भारत के केंद्रीय सरकारी और जम्मू-काश्मीर के अब्दुल्ला वहां के राजनेता प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे पाकिस्तान का खेल खेलते रहे। फलस्वरूप जम्मू-काश्मीर के इस भाग को भारत के साथ जोड़े रखना भी एक समस्या बन गयी है।

इस भाग में शामिल काश्मीर घाटी, जम्मू और लद्दाख क्षेत्रों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी का होना और उनके समाधान में यथार्थवादी तर्कसंगत और राष्ट्रहित अनुकूल नीति अपनाना बदलते हालात की सबसे बड़ी आवश्यकता और तकाजा है। उस जानकारी के आधार पर ही समस्या का स्थायी हल निकाला जा सकता है।

काश्मीर-घाटी

जम्मू और काश्मीर राज्य के छः में से तीन भागों, जो नियंत्रण रेखा के भारतीय पार्श्व में पड़ते हैं, में सर्वाधिक प्रसिद्ध काश्मीर घाटी है। वितस्ता नदी, जो अब झेलम कहलाती है, की यह विशाल घाटी समुद्रतल से 5,000 फीट की ऊँचाई पर है। झेलम के उद्‌गम वेरीनाग के स्रोतों से लेकर वराहमूल, जो अब बारामूला कहलाता है, तक इस घाटी का विस्तार 80 मील की लम्बाई और 40 मील की चौड़ाई में है। झेलम में मिलने वाली सहायक नदियों की कुछ छोटी घाटियाँ भी इसमें शामिल हैं। इनमें लिदर तथ सिन्ध की घाटियाँ जिनमें काश्मीर के दो सुन्दरतम पर्यटन स्थल, पहलगम और सोनामर्ग स्थित हैं, प्रमुख हैं।

इतिहास तथा किंवदन्तियों के अनुसार इस घाटी के स्थान पर पहले एक विशाल झील थी। हिमालय पर्वत श्रृंखला में बारामूला के समीप एक महान संत कश्यप ऋषि ने जल के प्रवाह के लिए एक मार्ग बना दिया जिससे झील का पानी निकल गया और उसका तल एक घाटी के रूप में परिवर्तित हो

गया जिसे कश्यप मर्ग या कश्यप निवास कहा जाने लगा। वर्तमान नाम काश्मीर कश्यप मर्ग से ही बना है। कुछ छोटी झीलें, जिनमें डल, मानसबल और बुलर प्रमुख हैं, अब भी इस घाटी में स्थित हैं। बुलर के बीचोंबीच झेलम नदी बहकर जाती है।

झेलम द्वारा बारामूला के निकट हिमालय को काटकर बनाये गये जलमार्ग के अतिरिक्त यह घाटी चारों ओर से ऊँची हिमालय पर्वत श्रृंखलाओं से घिरी हुई है। अतः इस घाटी तक हर मौसम में पहुँचने योग्य मार्ग केवल झेलम के साथ-साथ ही हैं। इसके साथ-साथ बनायी गयी 'झेलम घाटी सड़क' ने काश्मीर को पंजाब में रावलपिण्डी और हवेलियाँ के रेलवे स्टेशनों से सम्बद्ध किया है। घाटी के चारों ओर की हिमालय पर्वत श्रृंखला में कई दर्रे हैं। इनमें दक्षिण की ओर बनिहाल, नन्दीमार्ग तथा सिन्थान, पूर्व की ओर थोजीला, उत्तर की ओर बुर्जीला तथा उत्तर-पश्चिम की ओर हाजी पीर हैं। सिन्थान, बनिहाल तथा नन्दीमार्ग दर्रे जो घाटी को दक्षिण में जम्मू से जोड़ते हैं, लगभग दस हजार फीट की ऊँचाई पर हैं तथा वर्ष में तीन मास हिमाच्छादित रहते हैं। डोगरा शासकों ने काश्मीर घाटी को जम्मू से जोड़ने के लिए छकड़ों और गाड़ियों के जाने योग्य एक सड़क बनाई थी जो लगभग नौ हजार फीट की ऊँचाई पर बनायी गई बनिहाल सुरंग में से होकर जम्मू क्षेत्र में प्रवेश करती थी। अब इसके नीचे 7000 फुट की ऊंचाई पर एक और सुरंग बनाई गई है। इसे नेहरू टनल कहा जाता है। यह सुरंग लगभग सारा वर्ष खुली रहती है।

घाटी को कारगिल तथा लद्दाख से मिलाने वाला योजीला दर्रा लगभग 12 हजार फीट की ऊँचाई पर है तथा इसे गिलगित से मिलाने वाला बुर्जीला भी इतनी ही ऊँचाई पर है। ये वर्ष में लगभग 5 मास हिमाच्छादित रहते हैं। इन दर्रों के पार के क्षेत्र में तिब्बती अथवा लद्दाखी प्रभाव उनके नामों से ही स्पष्ट है। 'ला' दर्रे के लिए तिब्बती शब्द है।

इस भौगोलिक स्थिति के कारण काश्मीर घाटी का भारत के अन्य राज्यों से पृथक् राजनीतिक अस्तित्व रहा है। परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से यह भारतीय हिन्दू सांस्कृतिक धारा का अंग ही नहीं वरन् केन्द्र रही है। हिन्दू संघ के शैवमत और बौद्ध मत की महायान शाखा ने यहाँ अधिक उन्नति

की। आज भी इन मतों का प्रभाव इस घाटी के जीवन, संस्कृति तथा वास्तुकला में स्पष्ट लक्षित होता है।

संस्कृत के कई विद्वानों और संतों के अतिरिक्त काश्मीर में दो महान इतिहासकार-कल्हण और रत्नाकर हुए। कल्हण की राजतरंगिणी प्राचीन समय से मुसलमानों के आगमन तक काश्मीर के इतिहास का वर्णन करती है। नीलमत पुराण में भी इस घाटी के इतिहास की झांकी मिलती है।

किंवदन्ति के अनुसार काश्मीर घाटी का मुख्य शहर श्रीनगर मौर्य सम्राट् अशोक द्वारा बसाया गया था। बाद में कुशाण सम्राट् कनिष्क ने इसे बौद्ध मत की महायान शाखा का केन्द्र बनाया और घाटी के उत्तरी भाग में बारामूला के निकट कनिष्कपुरा, जो अब कंसपुरा कहलाता है, बसाया। उसने घाटी में कई विहार भी बनवाये। उसके शासनकाल में काश्मीर में चौथा बौद्ध सम्मेलन भी हुआ।

ईसा की चौथी शताब्दी में हूण राजा मिहिरकुल ने पंजाब से निकाले जाने के बाद कुछ समय के लिए काश्मीर का सिंहासन हथियाए रखा।

काश्मीर का सर्वाधिक प्रसिद्ध राजा ललितादित्य रहा है जिसने ईसा की सातवीं शताब्दी में शासन किया। उसने घाटी के बाहर भी अपने राज्य का विस्तार किया। उसके राज्य में न केवल राजपुरी, जो अब राजौरी कहलाता है, तथा जम्मू अपितु पंजाब का भी बड़ा भाग सम्मिलित था। उसने एक पठार पर सूर्य का प्रसिद्ध 'मार्तण्डम मन्दिर' बनवाया जहाँ से अनन्तनाग शहर और मटन के पवित्र स्रोत दिखलाई देते हैं। इस मन्दिर के, जिसे 14वीं शताब्दी के अन्त में मुसलमान सिकन्दर ने ध्वस्त किया था, विशाल खण्डहर आज भी ललितादित्य के काल के काश्मीर का गौरव दर्शाते हैं।

काश्मीर का एक और प्रसिद्ध शासक अवन्तिवर्मन था जिसने ईसा की 11वीं शती में शासन किया। उसने श्रीनगर और अनन्तनाग के मध्य एक नया नगर अवन्तिपुरा बसाया। उसके सय्या नाम के महामन्त्री ने झेलम नदी को बुलर झील से बारामूला तक ओर गहरा किया जिससे उसका प्रवाह अधिक हो गया। फलस्वरूप अधिक उपजाऊ भूमि पानी से खाली हो गयी। इस नव-विकसित भूमि के एक भाग पर सय्यापुर नाम का शहर बसाया गया। अब यह नगर सोपुर कहलाता है।

महमूद गजनवी के आक्रमणों के पश्चात् अफगानिस्तान और खुरासान के कुछ मुसलमानों ने घाटी में प्रवेश किया। परन्तु इस पर मुसलमानों का शासन चौदहवीं शताब्दी के मध्य में वहाँ के ब्राह्मणों की भूल के कारण स्थापित हुआ। काश्मीर की विधवा रानी ने एक खुरासानी आगंतुक रंजन शाह से विवाह कर लिया। वह हिन्दु बनना चाहता था परन्तु काश्मीरी पण्डितों ने उसे स्वीकार नहीं किया। तब उसे एक मुस्लिम सन्त शाह हमदान ने मुसलमान बना लिया। इस प्रकार इस घाटी का राज्य एक अनिच्छा से बने मुसलमान के हाथ में पड़ गया।

कुछ समय पश्चात् एक अन्य मुस्लिम आक्रमणकारी सिकन्दर ने काश्मीर पर अधिकार कर लिया। उसने बल-प्रयोग द्वारा समस्त काश्मीर का इस्लामीकरण किया। उसने सहस्रों मन्दिरों, जिनमें मार्तण्ड मन्दिर भी सम्मिलित था, तथा बौद्ध विहारों को नष्ट कर दिया, और तलवार के बल पर लोगों को मुसलमान बनाया। विरोध करने वालों को मारकर डल झील में फेंक दिया गया। उनके शवों से एक बाँध, जो 'बट मजार' अर्थात् 'पण्डितों की कब्र' कहलाया, बन गया जो अब भी उस झील के मध्य में अवस्थित है। कुछ पण्डितों ने जम्मू के सुरक्षित क्षेत्र में शरण ली। वर्तमान काश्मीरी पण्डित उन्हीं शरणार्थियों की सन्तति हैं जो बाद में घाटी में वापस चले गये थे।

मुगलों ने 16वीं शताब्दी में काश्मीर को विजय किया तथा सौ वर्षों से अधिक समय तक यह मुगल साम्राज्य का एक सूबा रही। मुगल सम्राटों ने डल झील के पास कई बाग लगाकर इसे और सुन्दर बनाया। अकबर ने शहर के मध्य एक पहाड़ी के ऊपर बने हरिपर्वतदुर्ग के चारों ओर एक दीवार बनवाई। डल झील के किनारे एक हजार फीट की ऊँची पहाड़ी की चोटी पर शंकराचार्य मन्दिर के नाम से एक प्रसिद्ध शिवालय भी है। केवल ये दो प्राचीन स्मृति-चिन्ह ही अब श्रीनगर का सम्बन्ध इसके अतीत से जोड़ते हैं। अन्य सभी प्राचीन मन्दिर, विहार इत्यादि ध्वस्त कर दिये गये हैं। उनके खंडहरों पर या उनमें थोड़ा फेर-बदल करके मस्जिद बना दी गयी हैं। काश्मीर की मस्जिदों की विशिष्ट बनावट उनके मूलरूप से हिन्दुओं अथवा बौद्धों द्वारा निर्मित होने की ओर इंगित करती हैं।

मुगल शासन के अन्तिम दिनों में अफगानिस्तान के पठानों ने घाटी पर अधिकार कर लिया तथा लगभग पचास वर्ष शासन किया। महाराजा रणजीतसिंह ने इसे 1820 ई0 के लगभग पठानों से छीनकर अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया। 1846 में यह गुलाबसिंह के अधिकार में आयी। उसने काश्मीर को अपने विशाल राज्य का एक अलग प्रान्त तथा श्रीनगर को इसकी ग्रीष्मकालीन राजधानी बनाया।

डोगरा शासकों ने काश्मीर घाटी समेत अपने विशाल राज्य पर 27 अक्तूबर 1947 तक शासन किया। उन्होंने इसे सुन्दर बनाने में दिल खोलकर व्यय किया तथा मोटर चलाने योग्य सड़क द्वारा इसे रावलपिंडी, हवेलियाँ, जम्मू तथा स्यालकोट से जोड़ा। वर्तमान श्रीनगर तथा गुलमर्ग और पहलगाम के पर्यटन स्थलों का विकास डोगरा शासकों, विशेषकर महाराजा हरिसिंह के द्वारा किया गया। उन्होंने इसे विकसित करने ओर सुन्दर वनाने के लिए अत्यधिक ध्यान दिया ओर अपने व्यक्तिगत कोष में से भी काफी धन इस पर व्यय किया।

1846 की अमृतसर सन्धि के अनुसार जम्मू एवं काश्मीर को वस्तुतः नेपाल की तरह सर्व सत्ता सम्पन्न स्वतन्त्र राज्य मान लिया गया था परन्तु इसके शासक ने भी अंग्रेजों के वर्चस्व को माना ओर प्रतीक रूप प्रतिवर्ष कुछ शाल ओर बकरियाँ ब्रिटिश सरकार को भेंट करना स्वीकार किया। यह सन्धि हैदराबाद इत्यादि अन्य देशी राजाओं के साथ की गयी सन्धियों, जिनके अनुसार उनके राज्यों में 'अंग्रेजी सेना और अंग्रेज रेजीडेण्ट' रखने की व्यवस्था थी, से सर्वथा भिन्न थी। जम्मू-काश्मीर राज्य अंग्रेजों के लिए भी विदेशी क्षेत्र था ओर कोई भी अंग्रेज उसमें महाराजा की विशेष अनुमति से ही प्रवेश कर सकता था। इसके अन्दर अंग्रेजी सेना या रेजीडेण्ट को रखने का कोई प्रावधान नहीं था।

कुछ वर्षों तक तो ब्रिटिश सरकार ने इस सन्धि का प्रामाणिकता से पालन किया। परन्तु 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में रूसी साम्राज्य के मध्य एशिया और अफगानिस्तान की ओर तेजी से बढ़ने और ब्रिटिश साम्राज्य के साथ उसके टकराव की बढ़ती सम्भावना के कारण ब्रिटिश सरकार की गिद्ध दृष्टि राज्य के उत्तरी भाग पर, विशेषकर गिलगित क्षेत्र

जहाँ तीनों साम्राज्यों-रूसी, चीनी और अंग्रेजों की सीमा मिलती थी, पड़ने लगी। उन्होंने राज्य में अंग्रेज रेजीडेण्ट रखने तथा गिलगित और लद्दाख में ब्रिटिश सरकार के एजेंट रखने के लिए महाराणा रणवीरसिंह से प्रार्थना की।

रणवीरसिंह एक महान योद्धा तथा कुशल प्रशासक था। उसने राज्य को प्रगतिशील तथा उन्नत बनाया। उसके समय की एक प्रमुख घटना थी, काश्मीर घाटी के मुसलमानों का फिर से हिन्दू बनने का अनुरोध। रणवीर सिंह इस अनुरोध को स्वीकार करने के लिए तैयार था परन्तु काश्मीरी पण्डितों ने सोचा कि इससे उनका सत्ता की दलाली में एकाधिकार समाप्त हो जायेगाा। उन्होंने महाराजा को धमकी दी कि यदि उसने मुसलमानों के इस अनुरोध को सवीकार किया तो उनमें से कुछ इसके विरोध में आत्महत्या कर लेंगे तथा महाराजा 'ब्रह्महत्या' का दोषी होगा। रणवीरसिंह धर्मभीरू निकला। वह उनकी धमकी के आगे झुक गया। इस प्रकार काश्मीर के लोगों को राष्ट्र की मुख्य धारा में वापस लाने का यह अवसर हाथ से निकल गया।

रणवीरसिंह की मृत्यु के बाद अंग्रेजों को राज्य में पाँव जमाने का अवसर मिल गया। रणवीरसिंह के उत्तराधिकारी प्रतापसिंह ने श्रीनगर में एक अंग्रेज रेजीडेण्ट रखना स्वीकार कर लिया। उसने अंग्रेजों को अपने राजनैतिक एजेण्ट लेह तथा गिलगित में भी रखने की अनुमति दे दी।

प्रतापसिंह द्वारा ब्रिटिश दबाव के आगे झुकने का मुख्य कारण पारिवारिक झगड़ा था। उसके छोटे भाई अमरसिंह ने रणवीरसिंह के उत्तराधिकारी होने के दावे को चुनौती दी थी। इसलिए प्रतापसिंह को सिंहासन पर बैठने के लिए ब्रिटिश सरकार की सहायता चाहिए थी जिसकी कीमत उसे चुकानी पड़ी।

राजा अमरसिंह का पुत्र हरिसिंह, जो प्रतापसिंह के निधन के बाद काश्मीर का महाराजा बना, एक आदर्शवादी युवक था। उसने 1930 में लन्दन में हुए गोलमेज सम्मेलन में भारत के लिए स्वाधीनता की माँग को खुल्लमखुल्ला अपना समर्थन देते हुए जो वक्तव्य दिया उससे अंग्रेज रूष्ट हो गये। अंग्रेजों ने इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप शेख अब्दुल्ला को, जिसे नैतिक पतन का दोषी पाये जाने पर राज्य की सेवा से निकाला गया था, अपना समर्थन

दिया। वह अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का स्नातक था और उसकी मनोवृत्ति साम्प्रदायिक थी। उसने मुस्लिम कान्फ्रेंस नामक संगठन बनाया और काश्मीर में हिंसात्मक साम्प्रदायिक आन्दोलन का सूत्रपात्र किया। उसे ब्रिटिश सरकार की शह प्राप्त थी। रियासत के बाहर के मुस्लिम नेताओं और पंजाब के मुस्लिम संगठनों का उसे ठोस समर्थन मिला। हरिसिंह को झुकना पड़ा। उसने संवैधानिक सुधारों के लिए ग्लांसी कमीशन बैठाया तथा गिलगित का क्षेत्र साठ वर्षों के लिए पट्टे पर अंग्रेजों को दे दिया। इस प्रकार अंग्रेजों तथा उनके पिट्ठुओं का उद्देश्य पूरा हो गया। अंग्रेजों को गिलगित तथा अब्दुल्ला को राजनीतिक मान्यता मिल गयी। काश्मीरी मुसलमानों में उसका सम्मान बढ़ गया। वह उनका सबसे प्रभावी नेता बन गया।

1939 से शेख अब्दुल्ला ने मुस्लिम कान्फ्रेंस का नाम बदलकर उसे नेशनल कान्फ्रेंस कर दिया। ऐसा करने का उद्देश्य अपने राजनीतिक मन्तव्य के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा भारतीय प्रेस का समर्थन प्राप्त करना था। खान अब्दुल गफ्फार खाँ ने भी इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उसने शेख अब्दुल्ला को समझाया कि क्योंकि काश्मीर घाटी की जनसंख्या का 65% भाग मुसलमान हैं इसलिए सत्ता का हस्तांतरण जब और जैसे भी होगा, काश्मीरियों के नेता के रूप में सत्ता उसी को मिलेगी। इस रणनीति से उसे प्रचुर लाभ मिला। पंडित जवाहरलाल नेहरू उसमें और उसकी राजनीति में विशेष रूचि लेने लगे। उनहोंने उसे अखिल भारतीय राज्य लोक कांफ्रेस (All India States People Conference) का अध्यक्ष बना दिया जिससे उसे राष्ट्रीय मंच पर आने का भी अवसर मिल गया।

दूसरे विश्वयुद्ध के समय, जब कांग्रेस के सभी नेता जेल में थे, अब्दुल्ला साम्यवादियों के निकट सम्पर्क में आया। इससे उसके भीतर की साम्प्रदायिक भावना को एक कथित 'प्रगतिशील' आड़ मिल गयी। कम्यूनिस्टों ने उसे काश्मीर का स्वतन्त्र समाजवादी राज्य बनाने का विचार दिया। शेख अब्दुल्ला द्वारा प्रचारित 'नया काश्मीर' का विचार मूलतः कम्यूनिस्टों की देन थी।

दूसरे महायुद्ध की समाप्ति के बाद स्थिति तेजी से बदलने लगी। ब्रिटेन में 1945 में नये चुनाव हुए। उसमें लेबर पार्टी जीत गयी ओर वहाँ मेजर

एटली के नेतृत्व में नयी सरकार बनी। लेबर पार्टी भारत को स्वतन्त्रता देने को प्रतिबद्ध थी। वैसे भी द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटेन सैनिक और आर्थिक दृष्टि से बहुत दुर्बल हो गया था। इसलिए यह लगने लगा कि ब्रिटिश शीघ्र ही भारत को स्वतन्त्र करके चले जाएँगे। शेख अब्दुल्ला चाहता था कि अंग्रेजों के भारत छोड़ने और देशी नरेशों के अपने राज्यों की पूरी सत्ता वापिस मिलने से पहले वह काश्मीर घाटी पर अपना अधिकार जमा ले। इस उद्देश्य से उसने 1946 में 'काश्मीर छोड़ो' आन्दोलन छेड़ दिया। यह आन्दोलन काश्मीर के महाराजा तथा जम्मू के लोगों के विरूद्ध था, ब्रिटिश सरकार के नहीं। इसके सम्बन्ध में उसने पण्डित नेहरू या कांग्रेस के किसी नेता से परामर्श भी नहीं किया था।

महाराजा की सरकार ने चन्द दिनों में ही इस आन्दोलन को दबा दिया और शेख अब्दुल्ला को पकड़कर जेल में डाल दिया।

शेख अब्दुल्ला के पकड़े जाने पर उसके अभिभावक पण्डित नेहरू जिनकी उसने आन्दोलन शुरू करने से पहले सलाह तक न ली थी, उसकी सहायता करने के लिए छटपटाने लगे। उन्होंने काश्मीर जाने की घोषणा कर दी। कुछ समय बाद ही वह भारत की अन्तरिम सरकार के प्रमुख बनने वाले थे। इसीलिए उस समय उनका अहं भाव आकाश को छू रहा था। महाराज हरिसिंह की सरकार ने उनके काश्मीर-प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाकर और उन्हें कोहाला में बन्दी बनाकर उनके अहं भाव पर जबरदस्त चोट की। यह एक भारी भूल थी। इसने पण्डित नेहरू को हरिसिंह का शत्रु बना दिया। शेख अब्दुल्ला के प्रति नेहरू का मोह और हरिसिंह के प्रति शत्रुता का भाव 1947 के बाद उभरी काश्मीर समस्या को पैदा करने और उलझाने का प्रमुख कारण बना।

अक्तूबर 1947 के घटना चक्र और पण्डित नेहरू की अनुकम्पा से शेख अब्दुल्ला के अप्रत्याशित रूप से सत्ता में आने के बाद काश्मीर घाटी के जन-जीवन तथा इतिहास में एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। शेख अब्दुल्ला ने घाटी पर अपनी राजनीतिक सत्ता कायम करने का निश्चय कर रखा था। उसे जम्मू ओर लद्दाख की चिन्ता नहीं थी। यदि महाराज हरिसिंह ने चतुराई से काम लिया होता तो वे जम्मू और लद्दाख को शेख अब्दुल्ला के हाथ में

न जाने देते। इसमें सभी सम्बन्धित पक्षों की भलाई थी। परन्तु शेख अब्दुल्ला का भाग्य बलवान था। पण्डित नेहरू की दया से वह काश्मीर के साथ-साथ जम्मू और लद्दाख का भी मालिक बन बैठा।

डिक्सन का जनमत को राज्य के अनिश्चित क्षेत्र तक सीमित रखने का सुझाव जिसमें उसके अनुसार "काश्मीर की घाटी तथा ऊड़ी-टीटवाल जैसा कुछ समीपस्थ क्षेत्र आता था, शेख अब्दुल्ला के अनुकूल था। वह काश्मीरी मुसलमानों का मानस जानता था। परन्तु व्यक्तिगत कारणों से वह काश्मीर को पाकिस्तान में सम्मिलित होने देना नहीं चाहता था। इसीलिए वह संयुक्त राज्य अमेरिका की परोक्ष तथा गुप्त सहायता से स्वतन्त्र काश्मीर घाटी के मनसूबे बाँधने लगा। 1949 में जब वह संयुक्त राष्ट्र संघ को गये भारतीय शिष्टमंडल के सदस्य के रूप में न्यूयार्क से लौट रहा था, उसने लन्दन में 'डेली टेलीग्राफ' नाम के प्रमुख पत्र को दिये अपने साक्षात्कार में काश्मीर घाटी को स्वतन्त्र राज्य बनाने सम्बन्धी अपना विचार सार्वजनिक रूप में पहली बार व्यक्त किया। इससे सरदार पटेल को हस्तक्षेप करने का अवसर मिला। उन्होंने शेख अब्दुल्ला को लौटते ही दिल्ली बुलवाया तथा उसे बताया कि यदि उसे स्वतन्त्रता चाहिए तो भारत काश्मीर घाटी से अपनी सेनाएँ वापस बुलाने को तैयार है। इससे वह हत्प्रभ रह गया। जैसे ही भारतीय सेनाएँ वापस लौटतीं, पाकिस्तान घाटी पर बलात् अधिकार कर लेता और खान अब्दुल गफ्फार खाँ की तरह उसको भी पाकिसतान की जेलों की हवा खानी पड़ती। परन्तु पण्डित नेहरू ने काश्मीर के मामले को समाप्त करने का यह अवसर भी खो दिया। यदि पण्डित नेहरू में रत्ती भर भी यथार्थवादिता और दूरदर्शिता होती तो वे शेख अब्दुल्ला को सदा के लिए उसका वास्तविक स्थान बता देते।

1950 में सरदार पटेल की मृत्यु से शेख अब्दुल्ला को बड़ा चैन मिला। तब वह प्रत्यक्ष रूप में निडर होकर अपना खेल खेलने लगा। वह आरम्भ से ही काश्मीर घाटी को अपने अधीन एक स्वतन्त्र इस्लामी राज्य के रूप में देखने के अपने चिरसंचित स्वपन की राह में काश्मीर के अल्पसंख्यक हिन्दुओं को काँटा समझता था। इसलिए उसने न केवल पाकिस्तान से आये बल्कि रियासत के पाकिस्तान द्वारा अधिकृत भाग से भी आये हिन्दू

शरणार्थियों को भी काश्मीर घाटी में न बसने दिया। उसने उन सबको पूर्वी पंजाब अथवा जम्मू की ओर धकेल दिया। उसके बाद उसने काश्मीरी पण्डितों पर भी काश्मीर छोड़ने के लिए दबाव डालना प्रारम्भ कर दिया। काश्मीरी पण्डित दूरदर्शिता के अभाव में उसके इरादे नहीं समझ सके। वे पण्डित नेहरू पर पूरा भरोसा किये हुए थे, परन्तु पण्डित नेहरू पूर्ण रूप से शेख अब्दुल्ला की जेब में थे। इसीलिए काश्मीरी पण्डित धोखे में रहे। यह एक कटु सत्य है कि काश्मीरी पण्डितों के सबसे बड़े शत्रु वे स्वयं और नयी दिल्ली में उनके अभिभावक सिद्ध हुए हैं।

पण्डित प्रेमनाथ डोगरा के नेतृत्व में "जम्मू प्रजा परिषद्" के प्रयत्नों ओर भारतीय जनसंघ के संस्थापक अध्यक्ष डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी के महान बलिदान ने 1953 में काश्मीर को भारत के हाथ से निकलने से बचा लिया। ठीक उस समय जब वह अपने अमेरिकी संरक्षकों तथा पाकिस्तान के सहयोग से काश्मीर को स्वतन्त्र शेख राज्य घोषित करने की योजना को अन्तिम रूप दे रहा था, शेख अब्दुल्ला को पदच्युत करके गिरफ्तार कर लिया गया।

यह स्थिति भारत के लिए सुअवसर था कि वह संविधान के अन्तर्गत धारा 370 को निरस्त कर काश्मीर राज्य द्वारा उपभोग किये जा रहे विशेषाधिकार को समाप्त करके काश्मीरी मुसलमानों के मस्तिष्क से अनिश्चिता की भावना को निकाल दे। परन्तु एक बार फिर अवसर का लाभ उठाने में चूक हो गयी। यदि उस समय सरदार पटेल जीवित होते तो शायद स्थिति का लाभ उठाया जाता। 1953 में पण्डित नेहरू की स्थिति निरंकुश-ऊंट जैसी थी। उन पर किसी का अंकुश नहीं था।

1962 के चीनी आक्रमण तथा रूस की उदासीनता ने भारत को संयुक्त राज्य अमेरिका और इंग्लैण्ड से सहायता के लिए अनुरोध करने पर विवश कर दिया। उन्होंने तुरन्त सहायता तो भेजी परन्तु अवसर का लाभ उठाकर भारत पर काश्मीर समस्या का एक समाधान थोपना चाहा। इस योजना के अनुसार घाटी को दो भागों में बाँटा जाना था। इसका उत्तरी भाग जिसमें गुलमर्ग, हाजीपीर तथा राज्य के पाक-अधिकृत भाग के समीपस्थ बारामूला का जिला सम्मिलित हैं, पाकिस्तान को दिया जाना था

तथा दक्षिण का भाग जिसमें अनन्तनाग, मट्टन, मर्तण्ड, पहलगाम, अमरनाथ की पवित्र गुफा तथा लद्दाख क्षेत्र को मिलाने वाले येजला दर्रे को जाने वाली सोनामर्ग घाटी भी सम्मिलित हैं, भारत के पास रहने देना था। परन्तु चीन द्वारा अचानक एक पक्षीय युद्धविराम की घोषणा ने पण्डित नेहरू को इस योजना को नकारने का अवसर दे दिया। चीन के इस एक पग से नयी दिल्ली में काश्मीरी पण्डित प्रधानमन्त्री की गद्दी तो बच गई परन्तु काश्मीर घाटी के काश्मीरी पण्डितों का भविष्य धूमिल हो गया। वे मुख्यतया काश्मीर के दक्षिण भाग में ही सघन बसे हुए हैं। 1962 की यह योजना घाटी के इस भाग के विषय में अनिश्चितता को समाप्त करके भारत के अभिन्न अंग के रूप में वहाँ के हिन्दुओं के भविष्य को सुरक्षित कर सकती थी।

काश्मीर घाटी की एकता तो बच गयी परन्तु इसके भविष्य की अनिश्चितता बनी रही। पाकिस्तान को निराशा हुई। उसे लगा कि वह भारत के संकट का लाभ नहीं उठा सका। तब उसने सैन्यबल द्वारा अपना उद्देश्य पूरा करने हेतु 1965 में भारत पर एक और युद्ध थोप दिया। यदि भारत ने काश्मीर घाटी पर पाकिस्तानी आक्रमण के प्रत्युत्तर में उसके लाहौर क्षेत्र पर हमला नहीं किया होता तो निश्चित रूप से पाकिस्तान ने घाटी पर अधिकार कर लिया होता। काश्मीर क्षेत्र में भारत की अपेक्षा पाकिस्तान की सैन्य परिस्थितियां अधिक अनुकूल थीं। जब पाकिस्तान ने आक्रमण किया उस समय संयोगवश मैं श्रीनगर में था। राज्य के काश्मीरी पण्डित गृहमन्त्री डी0 पी0 धर ने मुझसे तुरन्त दिल्ली जाने तथा भारत सरकार से लाहौर के मोर्चो पर प्रत्याक्रमण करने का आग्रह करने की प्रार्थना की। सौभाग्य से उस समय तक पण्डित नेहरू स्वर्गवासी हो चुके थे। लालबहादुर शास्त्री में कुछ हद तक सरदार पटेल की दृढ़ता ओर यथार्थवादिता थी। लाहौर क्षेत्र पर किये गये प्रत्याक्रमण ने काश्मीर को बचा लिया।

जनवरी 1966 में ताशकन्द में लालबहादुर शास्त्री की सन्देहास्पद ओर रहस्यमय मृत्यु अथवा हत्या ने एक महान प्रधानमन्त्री को भारत से छीन लिया। यदि श्री शास्त्री जीवित रहते तो सम्भवतः वे पण्डित नेहरू द्वारा की गयी बहुत सी भूलों का सुधार कर देते।

लालबहादुर शास्त्री की उत्तराधिकारिणी श्रीमती इन्दिरा गांधी को भी शेख अब्दुल्ला से उतना ही लगाव था जितना उनके पिता को। उन्होंने एक बार फिर 1975 में शेख अब्दुल्ला को सत्ता सौंप दी। मैंने उन्हें तब लिखा था कि वह भूल कर रही हैं। मैंने तर्क दिया था कि जैसे चीते की खाल के दाग नहीं बदले जा सकते वैसे ही शेख अब्दुल्ला नहीं बदल सकता। उन्होंने प्रत्युत्तर में मुझे लिखा कि वे सोच-समझकर यह जोखिम उठा रही हैं। शीघ्र ही उन्हें अपनी भूल के लिए पछताना पड़ा।

शेख अब्दुल्ला ने सत्ता में आते ही जम्मू-काश्मीर प्रशासन को अपने 'स्वतन्त्र काश्मीर' के मन्तव्य के अनुरूप ढालना शुरू कर दिया, उसने जमाते-इस्लामी को खुली छूट दे दी ओर उसके तथा अपने जनमत मोर्चों के कार्यकर्ताओं को सरकारी सेवा, विशेष रूप से पुलिस में भरती करना शुरू कर दिया। 1977 में दिल्ली में सत्ता बदल का भी उसने लाभ उठाया। जनता पार्टी के विदेश मन्त्री, वाजपेयी, नेहरू से भी बढ़कर अब्दुल्ला-भक्त निकले। उन्होंने धारा 370 को सदा के लिए बनाये रखने की घोषणा कर दी।

1982 में शेख अब्दुल्ला के निधन के बाद जिस ढंग से उसके पुत्र फारूख अब्दुल्ला को उसकी जगह मुख्यमन्त्री बनाया गया उससे घाटी की समस्या और उलझ गयी। पाकिस्तानी तत्त्व चाहते थे कि शेख अब्दुल्ला को पाकिस्तानी झण्डे से ढाँपकर दफनाया जाय। उसके लिए उन्होंने पूरी तैयारी कर रखी थी। भारत सरकार को उनकी इस योजना का पता लग गया। इसलिए इसने गवर्नर की सहायता से शेख अब्दुल्ला की मृत्यु का समाचार कई घण्टे तक दबाये रखा और इसी बीच फारूख अब्दुल्ला को मुख्यमन्त्री की शपथ दिलवा दी। संवैधानिक दृष्टि से यह गलत था। अब्दुल्ला की शवयात्रा के साथ सेना की टुकड़ियाँ रखी गयीं ताकि पाकिस्तानी तत्त्वों को शरारत करने से रोका जा सके। इस प्रकार फारूख भी अपने बाप की तरह भारत सरकार और भारतीय सेना के कन्धे पर सवार होकर मुख्यमन्त्री बना।

अपने बाप की तरह ही उसने सत्ता ग्रहण करते ही अपने फन दिखाने शुरू कर दिये। वह अपने आपको केन्द्र सरकार और कांग्रेस के प्रभाव से

मुक्त करना चाहता था। इसलिए उसने श्रीनगर की जामा मस्जिद के प्रमुख मौलवी फारुक, जो कट्टर भारत विरोधी है, के साथ गठजोड़ कर लिया और 1983 के विधान सभा चुनावों में कांग्रेस को पटखनी देकर काश्मीर घाटी में अपनी स्थिति मजबूत कर ली। इन्दिरा कांग्रेस ने फारुख अब्दुल्ला के साथ अपनी शर्तों पर गठजोड़ करने पर विफल होने पर जम्मू के हिन्दुओं के हित की भाषा बोलनी शुरू कर दी। इधर भारतीय जनसंघ के सिद्धान्त, झंडा, निशान और संस्थापकों को त्याग कर बनी भारतीय जनता पार्टी ने अपने आपको सैक्यूलर और प्रगतिवादी सिद्ध करने के लिए शेख अब्दुल्ला का गुणगान करना शुरू कर दिया। इस कारण से जम्मू के लोग भाजपा के विमुख हो गये और उन्होंने अपना भरपूर समर्थन कांग्रेस को दिया। फलस्वरूप जम्मू से भाजपा साफ हो गई। वहां से 23 स्थान कांग्रेस ने जीते परन्तु काश्मीर में यह केवल 3 स्थान जीत सकी। फारुख अब्दुल्ला को स्पष्ट बहुमत मिल गया और उसने अपने बल पर मन्त्रिमण्डल बना लिया। उसके बाद उसने खुलकर अपने बाप का भारत विरोधी खेल शुरू कर दिया।

फारुख अब्दुल्ला का भिंडरावाला के साथ तालमेल, जून 1984 में अमृतसर के स्वर्ण मन्दिर से देशद्रोहियों को निकालने के लिए की गयी सैनिक कार्यवाही के बाद काश्मीर में भिंडरवाले के साथियों और पाकिस्तानी तत्वों का तांडवनृत्य जिसमें श्रीनगर के आर्यसमाज समेत अनेक मन्दिर नष्ट कर दिये गये और 15 अगस्त, 1984 को पाकिस्तानियों द्वारा सारी घाटी में पाकिस्तानी झण्डे लहराना ऐसी घटनाएँ थीं जिन्होंने सारे देश को चौंका दिया।

फारुख अब्दुल्ला मन्त्रिमण्डल को राष्ट्रविरोधी कार्यवाहियों के लिए बर्खास्त करके राष्ट्रपति शासन लागू करने के बजाय कांग्रेस ने फिर अपने दलगत स्वार्थ के लिये एक और भूल की। इसने फारुख की पार्टी के कुछ दल-बदलू सदस्यों को अपना समर्थन देकर फारुख के बहनोई और शेख अब्दुल्ला के दामाद गुलाम मोहम्मद शाह को जम्मू-काश्मीर का मुख्यमन्त्री बना दिया। शाह का शेख अब्दुल्ला के उत्तराधिकारी होने के मामले में फारुख से झगड़ा हुआ था। परन्तु भारत और हिन्दू विरोध की दृष्टि से वह फारुख अब्दुल्ला से दो कदम आगे था। वह शेख अब्दुल्ला द्वारा बनाये गये

जनमत मोर्चा का प्रमुख रह चुका था। इसलिए उससे यह अपेक्षा करना कि वह राष्ट्रवादी होगा, अपने आपको धोखा देना था।

अपने 20 महीनों के राज्यकाल में शाह ने न केवल काश्मीर घाटी में अपितु जम्मू में भी मुस्लिम साम्प्रदायिकता और पृथक्वाद को बढ़ावा दिया। ज़मात-ए-इस्लामी को उसने भी लम्बी डोर दी। उसकी गतिविधियाँ घाटी में और तेज हो गयीं। इसके कार्यकलापों से कांग्रेस की स्थिति भी खराब होने लगी। इसीलिए कांग्रेस के विधायकों की ओर से ही शाह सरकार को समर्थन बन्द करके उसे हटाने की माँग उठने लगी।

फरवरी 1986 का घटनाचक्र जिसमें मुसलमानों ने काश्मीर घाटी, विशेषकर दक्षिण काश्मीर के अनन्तनाग जिले में 50 के लगभग मन्दिर नष्ट किये, सैकड़ों मकान जला डाले और हिन्दू स्त्रियों के प्रति अभद्र और अमानुषिक व्यवहार किया—शाह के 20 महीनों के शासनकाल का सबसे काला कारनामा था। जानकार सूत्रों के अनुसार इस कुकृत्य में कांग्रेस के तथाकथित समर्थकों ने भी बहुत घृणित भूमिका अदा की। कांग्रेस के काश्मीरी नेता समझते थे कि शाह की सरकार को बर्खास्त करने के बाद कांग्रेस काश्मीर में अपना मन्त्रिमण्डल बनायेगी और जम्मू-काश्मीर कांग्रेस के मुस्लिम अध्यक्ष को मुख्यमन्त्री बनने का अवसर मिलेगा।

मार्च 1986 में शाह मन्त्रिमण्डल को भंग करके जम्मू-काश्मीर में गवर्नर राज्य लगा दिया गया। तब शाह ने भारत और हिन्दुओं के विरुद्ध विष-वमन शुरू कर दिया। उसने काश्मीर में मुस्लिम कान्फ्रेंस को पुनः जीवित करने की घोषणा की और कहा कि काश्मीर में सेक्यूलररिज्म फेल हो चुका है। वह काश्मीर में पाकिस्तान की तरह का मजहबी इस्लामी राज्य कायम करने के पक्ष में है। इस प्रकार काश्मीरी मुसलमानों और उनके नेताओं की धर्मनिरपेक्षता और अल्पमतों के प्रति सहिष्णुता के दावों का घड़ा एक बार फिर फूट गया।

गर्वनर का राज्य कुछ महीनों तक ही चल सकता है। फारुक अब्दुल्ला चाहता था कि विधानसभा को भंग करके फिर नये चुनाव कराये जायें। उसे पूरा विश्वास था कि नये चुनावों में उसे स्पष्ट बहुमत मिलेगा। कांग्रेस चुनावों से घबराती थी। इसे लगा कि इस बार इसे जम्मू वाले भी ठुकरा

देंगे क्योंकि इसने उनके हितों और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए कुछ नहीं किया। इसलिए इसका प्रयत्न था कि फारुख या दलबदलुओं के साथ मिलकर अपना मन्त्रिमण्डल बनाये और चुनावों को टाले। इसीलिए विधानसभा भंग नहीं की गयी और राजीव गांधी ने कहा कि नये चुनाव 1989 में ही कराये जायेंगे।

फारुक अब्दुल्ला को यह स्थिति स्वीकार नहीं थी। इसलिए वह आन्दोलन करने की धमकियाँ देने लगा। दूसरी तरफ पाकिस्तान और उसके एजेण्ट काश्मीर के अन्दर और बाहर अधिक सक्रिय हो गये।

स्थिति को अधिक बिगड़ने देने से पूर्व भारत सरकार ने जम्मू-काश्मीर में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया और जगमोहन को राज्यपाल बनाकर वहां भेज दिया। इसके बाद स्थिति में कुछ सुधार हुआ। केन्द्र में राजीव गांधी की सरकार गिरने और 1989 में भाजपा समर्थित वी.पी. सिंह सरकार बनने और जगमोहन को वापिस बुलाए जाने के बाद के गत 10 वर्षों का घटनाचक्र सर्वविदित है। इस काल में पाकिस्तान ने अपनी "टोपाक योजना" को कार्यरूप देना शुरू किया और 1990 में काश्मीर घाटी से वहां के सारे हिन्दुओं को बलात् निकालकर इसका पूर्ण इस्लामीकरण कर दिया। तब से पाकिस्तान द्वारा चलाए जाने वाला अघोषित युद्ध जारी है। 1999 का कारगिल युद्ध इसी का एक अंग था।

ऊपर वर्णित काश्मीर घाटी की हजार वर्षों की कहानी से दो बातें स्पष्ट हो गयी हैं–

1. यह घाटी भौगोलिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से सदा अर्यावर्त्त अथवा भारतवर्ष या हिन्दुस्तान का अभिन्न अंग रही है। वैदिक हिन्दू संस्कृति और परम्परा इसके कोने-कोने में व्याप्त है। इसका हर सुन्दर स्थल चाहे वह कोई झरना है या चोटी किसी मन्दिर, विहार या आश्रम से सुशोभित रहा है। यहां के लोग ऐसे स्थलों में सत्यं शिवं सुन्दरम् रूपी परामात्मा का दर्शन पाते रहे हैं। इसके हर नगर और ग्राम का नाम इसके आर्य-हिन्दू होने का संकेत देता है। इसके प्राचीन भव्य मन्दिरों और विहारों में भग्नावशेष सब दूर बिखरे पड़े हैं। शंकराचार्य का मन्दिर, क्षीर भवानी तथा भट्टन के स्रोत अथवा चश्मे तथा अमरनाथ की गुफा की यात्रा करने

के लिए सारे देश के लोग यहां शताब्दियों से आते रहे हैं। वे इसको शेष भारत से जोड़ने वाली अटूट कड़ियाँ हैं। काश्मीरी भाषा पंजाबी, डोगरी और पशतू की तरह वैदिक संस्कृत से ही उपजी है और इस्लाम के आने तक शारदा लिपि जो, देवनागरी लिपि का ही एक रूप है, में लिखी जाती थी। इसकी भी अपनी साहित्यिक परम्परा है। लम्बे मुस्लिम राज्यकाल में भी काश्मीर ने अपनी सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखा। डोगरा राज्यकाल में इसे फिर विकसित होने का अवसर मिला।

2. स्वतन्त्र भारत के अंग के रूप में गत पांच दशकों में काश्मीर के, शासकों ने भारत सरकार की प्रत्यक्ष और परोक्ष सहायता से उस परम्परा, संस्कृति और सांस्कृतिक चिन्हों को, जो इसे अपने हिन्दू भूतकाल और शेष भारत के साथ जोड़ते हैं, नष्ट करने का योजनाबद्ध प्रयत्न किया है। नगरों और ग्रामों के नामों का इस्लामीकरण किया जा रहा है। मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट किया जा रहा है। मन्दिरों को तोड़ना और जलाना इसकी सांस्कृतिक जड़ों को काटने के अभियान में निकृष्टतम कृत्य हैं। संस्कृतनिष्ठ काश्मीरी भाषा की उपेक्षा की जा रही है और फारसी लिपि में उर्दू को राजभाषा के रूप में इस पर थोप दिया गया है। काश्मीरी भाषा का भी इस्लामीकरण और अरबीकरण किया जा रहा है। सरकारी दफ्तरों और शिक्षा-संस्थानों में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से प्रशिक्षित लोगों को भरा जा रहा है। ऐसे लोगों ने जमात-ए-इस्लामी के साथ मिलकर सारे प्रशासन को पाकिस्तानी रंग में रंग दिया है और नयी पीढ़ी का मानस दूषित कर दिया है। इस समय काश्मीर घाटी भारत में जमात-ए-इस्लामी का सबसे बड़ा अड्डा बन चुकी है।

यदि शेख अब्दुल्ला दयानतदार होता और पण्डित नेहरू और उसके उत्तराधिकारियों को काश्मीर सम्बन्धी मूल तथ्यों का कुछ ज्ञान होता, उनमें सच्ची राष्ट्रीय भावना होती तो स्थिति शायद इतनी न बिगड़ती। उनकी छत्रछाया में शेख अब्दुल्ला और उसके उत्तराधिकारी काश्मीर घाटी को इसके भूतकाल और शेष भारत से जोड़ने वाली सांस्कृतिक कड़ियों को लगातार तोड़ते गये और इसकी विलग मुस्लिम पहचान कायम करते गये। यही कारण है कि काश्मीर में आज कोई ललितादित्य अवन्ती वर्मन या

कल्हण का नाम नहीं लेता। नये मुस्लिम काश्मीर का फिलासफर पाकिस्तान का मन्त्रद्रष्टा डॉक्टर मोहम्मद इकबाल है। मार्तण्ड मन्दिर के भग्नावशेष भी खत्म हो रहे हैं परन्तु श्रीनगर में मक्का के नमूनों की नयी मसजिदें बनायी जा रही हैं। उद्देश्य इसे इसके हिन्दू भूतकाल से काटकर इस्लामी अरब और पाकिस्तान के साथ जोड़ना है।

काश्मीर घाटी के लोगों के इस अभारतीयकरण में भारत सरकार द्वारा उदारता से काश्मीर के विकास के लिए दिये जाने वाले धन की भी अपनी भूमिका है। भारत सरकार के अनुदानों, सेना का खर्च, फलों के निर्यात और पर्यटकों के बड़ी संख्या में आने के कारण काश्मीर घाटी में अथाह धन आया। गत कुछ वर्षों से अरबों के पेट्रोडालर भी बड़ी मात्रा में जमात-ए-इस्लामी तथा अन्य मुस्लिम संस्थाओं को मिल रहे हैं। फलस्वरूप काश्मीर के लोग आर्थिक दृष्टि से बहुत समृद्ध हो गये हैं। इस समय काश्मीर घाटी की प्रति व्यक्ति आय दिल्ली और बम्बई को छोड़कर शेष भारत में सबसे अधिक है। इस समृद्धि का काश्मीरी मुसलमानों में इस्लामी उन्माद और कट्टरता पैदा करने में बड़ा हाथ है। शेष भारत में भी देखा गया है कि ज्यों-ज्यों कोई मुसलमान समृद्ध होता है त्यों-त्यों वह अपनी औरतों को परदे में अधिक धकेलता है और इस्लामी सिद्धान्तवाद की अधिक दुहाई देने लगता है। काश्मीरी नवयुवकों के मनों में यह भाव भी पैदा कर दिया गया है कि यदि काश्मीर पाकिस्तान में मिल जाय या स्वतन्त्र इस्लामी राज्य बन जाय तो इसके विकास के लिए इस्लामी देशों से बहुत धन मिलने लगेगा और उन्हें सत्ता और सस्ती समृद्धि दोनों मिल सकेंगे।

इससे यह स्पष्ट हो गया है कि यह सोचना कि अधिक आर्थिक सहायता देने और काश्मीर के विकास की गति तेज करने से इस्लामी अलगाववाद को रोका जा सकता है, गलत है। काश्मीर को पूरी तरह भारत में मिलाये बिना उसके लोगों में जितनी अधिक समृद्धि आयेगी उतने ही अधिक भारत विरोधी बनते चले जायेंगे।

एक समय था जब काश्मीर की स्थिति को उसमें अधिक हिन्दू बसा कर सम्हाला जा सकता था। सोवियत रूस के नेताओं ने पण्डित नेहरू को सुझाव दिया था कि जिस प्रकार रूस ने अपने मध्य एशिया के मुस्लिम राज्यों में

रूसी बसाकर वहां पर मुसलमानों की जनसंख्या का अनुपात कम कर दिया है उसी प्रकार भारत भी काश्मीर के मुसलमानों को अन्यत्र बसाकर काश्मीर में अन्य क्षेत्रों से लाकर हिन्दू बसा दे। परन्तु पण्डित नेहरू और श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इस सुझाव पर अमल नहीं किया। फलस्वरूप सोवियत रूस का रुख भी काश्मीर के मामले में कुछ हद तक बदल गया। कुछ समय पूर्व एक रूसी राजनायिक ने इस लेखक को स्पष्ट कहा था कि जब भारत न काश्मीर में जनसंख्या का अनुपात बदलने को और न इसे शेष भारत में पूरी तरह मिलाने को तैयार है तब वह सोवियत रूस से कैसे अपेक्षा करता है कि वह काश्मीर के मामले में भारत के कांटे साफ करता रहे।

फलस्वरूप काश्मीर घाटी में भारत समर्थक कम होते गये। जो ऊपर से भारत के साथ होने का दावा करते हैं वे भी अन्दर से काश्मीर को स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य बनाने का स्वप्न देखने लगे। उन सब का धारा 370 बनये रखने में निहित स्वार्थ पैदा हो गया है। भारत सरकार ने काश्मीर का मामला यू०एन०ओ० से वापिस न लेकर और शिमला सन्धि के द्वारा पाकिस्तान को काश्मीर के मामले में एक पक्ष के रूप में मान्यता देकर अपनी स्थिति और खराब कर ली है। काश्मीर के मुसलमानों के मनों में यह बात बैठ गई है कि काश्मीर के भविष्य का फैसला होना अभी बाकी है।

शिमला संधि के कारण 1971 के युद्ध में भारत की पाकिस्तान पर जीत का काश्मीरी मानस पर भारत के अनुकूल पड़ा प्रभाव खत्म हो गया और उस पर भुट्टो की धाक बैठ गयी। 1975 में शेख अब्दुल्ला को पुनः काश्मीर की गद्दी पर बैठाने और उसके द्वारा अपनायी गंयी नीतियों ने काश्मीर में अलगाववाद और इस्लामवाद को और अधिक बल दिया। फारूख अब्दुल्ला ने अपने पिता की कार्य योजना के अनुसार काम किया और भारत सरकार को धत्ता बताने में शेख अब्दुल्ला से भी आगे निकल गया। शेख अब्दुल्ला के दामाद गुलाम मोहम्मद शाह ने अपने बीस महीने के शासन काल में रही सही कसर पूरी कर दी। फलस्वरूप 1988 में जब पाकिस्तान के सैनिक तानाशाह ने अपनी 'टोपाक योजना' को काश्मीर में कार्य रूप देना शुरू किया तो काश्मीर के मुस्लिम विशेष रूप में जमायते इस्लामी के मदरसों से निकली नई पीढ़ी का मानस इस योजना को कार्यरूप देने को तैयार था। वी.

पी. सरकार की भूलों, उसके भाजपा समर्थकों की दिशा विहीनता और गृहमंत्री मुफ्ती सईद की चालबाजी ने स्थिति को और बिगाड़ा। काश्मीर घाटी से 1990 में सभी हिंदुओं को निकाले जाना इस अलगाववादी इस्लामी उन्माद का सोचा समझा परिणाम था।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है काश्मीर घाटी को हिंदुओं से खाली करवाना शेख अब्दुल्ला की सोची समझी नीति का अंग था। उसने 1983 में प्रकाशित अपनी उर्दू में लिखित आत्मकथा 'आतिशी चिनार' में एक पूरा अध्याय काश्मीरी पंडितों पर लिखा था। उसके अनुसार काश्मीर घाटी के हिंदुओं विशेष रूप में उसके मूल हिंदू निवासी काश्मीरी पंडित शुरू से ही केंद्र सरकार के एजेंटो और जासूसो की भूमिका अदा करते रहे हैं और उसकी काश्मीर को पूर्ण इस्लामीकरण और उसे स्वतंत्र इस्लामी राज्य बनाने की कार्य योजना को कार्य रूप देने में सबसे बड़ी रूकावट हैं। उसने 1947 में सत्ता में आने के बाद से काश्मीर को हिंदुओं से खाली करवाने की दिशा में सोंचना और काम करना शुरू कर दिया था। उसने अपने काश्मीरी भाषा में दिये एक भाषण में काश्मीरी हिंदुओं को स्पष्ट शब्दों में कहा था कि 'या निकल जाओ या मुसलमान बन जाओ और या खत्म हो जाओ'। इसलिए 1990 में काश्मीर घाटी को सभी हिंदुओं से खाली करवाने की योजना के पीछे केवल पाकिस्तान की ही नहीं अपितु शेख अब्दुल्ला की सोच और उसके अनुयायियों का भी हाथ था।

काश्मीर घाटी से हिंदुओं को निकाल दिये जाने से इसकी समस्या के साथ एक नया आयाम जुड़ गया है। पांच लाख से अधिक काश्मीरी हिंदुओं का काश्मीर घाटी की धरती पर वैसा ही अधिकार है जैसा काश्मीरी मुसलमानों का। उन्हें ना भुलाया जा सकता है और ना उनके काश्मीर घाटी में पुर्नवास की मांग को नकारा जा सकता है।

संसारभर में फैले काश्मीरी हिंदू विस्थापितों ने एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन करके यह मांग उठाई है कि उन्हें काश्मीर घाटी के दक्षिण पूर्वी भाग में बसाया जाए क्योंकि वे अपने पुराने घरों में जो लूट लिये गये हैं और जिनको या जला दिया गया है या उनपर कब्जा कर लिया गया है और उन्मादी और जेहादी वृत्ति के मुसलमानों से घिरे हुए हैं वापस नहीं जा सकते। वे चाहते

हैं कि पुर्नवास क्षेत्र को "कोशर प्रदेश" का नाम दिया जाए और केंद्र शासित क्षेत्र का दर्जा दिया जाए। इससे स्पष्ट है कि वे पूर्णतः भारत का अंग बने रहना चाहते हैं और किसी प्रकार का विशेष दर्जा नहीं चाहते। उनकी इस राष्ट्रवादी और देशभक्ति को भारत की कोई भी राष्ट्रवादी सरकार नकार नहीं सकती।

इसलिए काश्मीर घाटी के भविष्य के संबंध में कोई भी नीति या योजना बनाते हुए काश्मीरी विस्थापितों के नेताओं को भी विश्वास में लेना आवश्यक होगा।

जम्मू-क्षेत्र

जम्मू-काश्मीर का वह भाग जो दक्षिण में सियालकोट के निकट स्थित सुचेतगढ़ से लेकर उत्तर में हिमालय की पीर पंचाल पर्वतमाला तक और पूर्व में रावी नदी से लेकर पश्चिम में युद्ध-बन्दी रेखा तक फैला हुआ है, जम्मू कहलाता है। यह क्षेत्र इस राज्य का राजनीतिक दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण और आर्थिक दृष्टि से सबसे अधिक क्षमता वाला भाग है। यह काश्मीर घाटी को शेष भारत के साथ जोड़ने वाली कड़ी है। इसलिए यह सही अर्थ में जम्मू-काश्मीर राज्य के भारतीय भाग की रीढ़ की हड्डी है। इसका हिन्दू-बहुल होना इस राज्य के भारत में विलय का सबसे बड़ा कारण और आधार बना और अब भी यह इसका प्रमुख आधार है।

महाराजा गुलाबसिंह द्वारा निर्मित विशाल राज्य का यह मूल क्षेत्र है। इसी को अपना आधार बनाकर गुलाबसिंह ने अपने राज्य का विस्तार किया था। उसके बहादुर डोगरा सैनिकों ने जनरल जोरावरसिंह, जिसकी तुलना पश्चिमी संसार के विख्यात सेनापति हनीबल से की जाती है, के नेतृत्व में

हिमालय को पार करके लद्दाख और बल्तिस्तान के इलाके गुलाबसिंह के राज्य में शामिल किये थे और भारत की सीमा को चीन और तिब्बत तक पहुँचाया था। भारत में विलय के बाद भारत की केन्द्रीय सरकार द्वारा अपने हितों और लोकतान्त्रिक आकांक्षाओं की लगातार उपेक्षा और रियासत की काश्मीरी मुस्लिम प्रधान सरकारों की भेदभाव की नीति के बावजूद इस क्षेत्र के लोगों ने ही गत 50 वर्षों में इस रियासत में राष्ट्रीय हितों की रक्षा की है। वे लगातार अन्दर के राष्ट्र-विरोधी तत्वों और शासकों तथा बाहर से पाकिस्तानी आक्रान्ताओं के साथ लोहा लेते रहे हैं।

इस विशाल क्षेत्र का क्षेत्रफल लगभग दस हजार वर्गमील और इसकी जनसंख्या लगभग 40 लाख है जिसमें सत्तर प्रतिशत से अधिक हिन्दू हैं। इसमें पाकिस्तानी सीमा से लेकर तवी नदी तक का उपजाऊ मैदानी इलाका, तवी से लेकर पत्नीधार पर्वत श्रृंखला तक का कण्डी का इलाका और पत्नीधार से लेकर पीरपंचाल तक का पर्वतीय इलाका शामिल है। इसमें भद्रबाह की घाटी जिसे छोटा काश्मीर भी कहा जाता है, और किश्तवाड़ और पाडर के पठार भी स्थित हैं। वजीर जोरावरसिंह ने किश्तवाड़ और पाडर के रास्तों से ही लद्दाख में प्रवेश किया था। लद्दाख के अतिरिक्त हिमाचल प्रदेश की पाँगी घाटी और चम्बा क्षेत्र भी इसके साथ लगते हैं। भद्रवाह को चम्बा के साथ मोटर रोड से जोड़ दिया गया है। किश्तवाड़ और पाडर के रास्ते लद्दाख तक की सड़क का निर्माण अभी नहीं हुआ। यदि यह सड़क बन जाय तो लद्दाख जाने का यह सबसे छोटा रास्ता होगा। काश्मीर घाटी के बाहर किश्तवाड़ में ही केसर पैदा होता है। काश्मीर घाटी की तरह इसकी ऊँचाई भी समुद्र तल से पांच हजार फीट है। भद्रवाह की घाटी अपनी जलवायु और प्राकृतिक छवि की दृष्टि से काश्मीर को भी मात करती है।

इस क्षेत्र के बीचोंबीच चिनाब नदी बहती है। इस क्षेत्र की प्राय: सभी नदियां जिनमें तवी सबसे प्रमुख है, चिनाब से मिलती हैं। जम्मू-क्षेत्र में प्रवेश करने से पहले इसका नाम चन्द्रभागा है। चन्द्र और भागा नाम की दो नदियां लाहौल के मध्य में गोशाल नामक गांव के पास आपस में मिल जाती हैं और दोनों का सम्मिलित प्रवाह चन्द्रभागा कहलाता है। चन्द्रभागा से इसका नाम चिनाब कैसे बना, यह खोज का विषय है।

इस क्षेत्र में कई झीलें हैं, उनमें प्रमुख मानसर और सुरीनगर हैं। तवी नदी का स्रोत कपलास कुण्ड भी एक झील है जो लगभग बारह हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित है। भद्रवाह की घाटी को दक्षिण में बसोहली से अलग करने वाली पर्वत श्रृंखला की तलहटी पर सरथल जैसे अनेक रमणीक स्थल और छोटी-छोटी घाटियाँ हैं, परन्तु अभी तक वे अविकसित और उपेक्षित रही हैं। रावी नदी पर थीम बाँध बन जाने के बाद बसोहली तक रावी नदी एक बड़ी झील बन गई है। अब ये रमणीक स्थल पठानकोट के और निकट हो गए हैं और यह क्षेत्र भी पर्यटकों का स्वर्ग बन सकता है।

इस क्षेत्र की आर्थिक क्षमता अथाह है। चिनाब और इसकी सहायक नदियों से हजारों मैगावाट बिजली पैदा की जा सकती है। चिनाब नदी पर रियासी के निकट सलाल और किश्तवाड़ के निकट दूल हस्ती, दो जल-विद्युत् योजनाएँ इस समय निर्माणाधीन हैं। इनसे उपलब्ध होने वाली बिजली से इस सारे क्षेत्र के द्रुतगति से औद्योगिक विकास का रास्ता खुल जाएगा। इसकी पर्वत श्रृंखलाएं देवदार और चीड़ के जंगलों से ढकी हुई हैं। ये जंगल इस समय जम्मू-काश्मीर राज्य की आय का सबसे बड़ा स्रोत है। इसमें लोहा, कोयला और नीलम इत्यादि खनिज पदार्थ भी बहुत हैं और कृषियोग्य भूमि भी बहुत है।

इस क्षेत्र का सबसे बड़ा आकर्षण पांच हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित श्री वैष्णोदेवी की गुफा है। सारे देश से प्रतिवर्ष बीस लाख के लगभग यात्री इसकी यात्रा के लिए आते हैं।

इस क्षेत्र का प्रमुख नगर और जम्मू-काश्मीर राज्य की शीतकालीन राजधानी जम्मू है। यह तवी नदी के तट पर एक पहाड़ी की ढलवान पर बसा हुआ है। परम्परा के अनुसार इस नगर को राजा जम्मूलोचन ने उस स्थान पर बनया था जहां उसने एक तालाब में शेर और बकरी को एक साथ पानी पीते देखा था। गुलाबसिंह इसी नगर के राजपरिवार में से था। उसके सुपुत्र महाराजा रणवीरसिंह ने इस नगर में अनेक भव्य मन्दिर बनवाए। इस कारण इसे मन्दिरों वाला नगर भी कहा जाता है। 1947 से पहले यह रेल से स्यालकोट के साथ जुड़ा हुआ था। परन्तु विभाजन के बाद वह रास्ता बन्द हो गया। अब इसे पठानकोट के साथ रेल से मिला दिया

गया है। इस रेल लाइन को आगे ऊधमपुर तक ले जाने का काम शुरू है। ऊधमपुर भारतीय सेना की उत्तरी कमाण्ड का मुख्यालय है। इस रेल लाइन के बन जाने पर इस क्षेत्र के विकास की गति और तेज हो सकती है।

शेख अब्दुल्ला और उसकी नेशनल कान्फ्रेंस का जम्मू में कोई प्रभाव नहीं था। उसके द्वारा 1946 में चलाए गये काश्मीर छोड़ो आन्दोलन का निशाना जम्मू के लोग और उनका डोगरा महाराज था। इस कारण जम्मू के लोगों में शेख अब्दुल्ला और उसकी पार्टी के प्रति विशेष रूप से घृणा का भाव था। यहां की साधारण जनता के लिए डोगरा महाराजा स्वाभाविक नेता और संरक्षक था। इसलिए उन्होंने महाराजा के हाथ से सत्ता छीनने की बात कभी सोची भी नहीं थी। इसी कारण जम्मू में कोई प्रभावी राजनीतिक दल भी नहीं था।

जब भारत के साथ विलय के बाद सारी रियासत का प्रशासन शेख अब्दुल्ला को सौंप दिया गया तो जम्मू भी उसके अधिकार में आ गया। पण्डित नेहरू की जम्मू में कोई रुचि नहीं थी और महाराजा हरिसिंह उस समय विवश था। जम्मू में ऐसा कोई प्रभावी दल और नेता नहीं था जो उस समय जम्मू के लोगों की ओर से जम्मू में सत्ता का दावा कर सकता। इस प्रकार 1947 का पाकिस्तानी आक्रमण और जम्मू-काश्मीर का भारत में विलय जम्मू के लोगों के लिए नयी गुलामी का कारण बन गया। उस समय के रियासत के प्रधानमन्त्री श्री मेहरचन्द महाजन से जब मैंने पूछा कि उन्होंने जम्मू की सत्ता भी शेख अब्दुल्ला को क्यों सौंप दी तो उनका प्रतिप्रश्न था कि जम्मू में सत्ता किसको सौंपते? यह एक कटु वास्तविकता है कि जम्मू के लोगों ने 1947 में सत्ता के हस्तान्तरण के समय अपना दावा पेश ही नहीं किया। उस समय कोई राजनीतिक संगठन था ही नहीं। उसकी कीमत वे आज तक चुका रहे हैं।

मुझे इस स्थिति का पूर्वाभास हो चुका था। इसलिए मैंने 1947 के शुरू में पण्डित प्रेमनाथ डोगरा से आग्रह किया था कि जम्मू के लोगों का एक प्रभावी राजनीतिक दल 15 अगस्त, 1947 से पूर्व बन जाना चाहिए। उस समय सारे जम्मू-क्षेत्र में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखाओं का जाल फैल चुका था। पण्डित प्रेमनाथ डोगरा इसके प्रमुख थे। इसलिए संघ के सहयोग

से कोई प्रभावी राजनीतिक संगठन चन्द महीनों में ही खड़ा किया जा सकता था। प्रेमनाथ डोगरा भी राजनीतिक संगठन की आवश्यकता को समझते थे परन्तु वे इसके निर्माण के लिए नागपुर से संघ के अधिकारियों की पूर्व अनुमति चाहते थे। मैं जम्मू में रहता तो सम्भवत: वांछित संगठन बना डालता परन्तु मुझे मार्च 1947 में काश्मीर जाना पड़ा। जाने से पहले मैंने प्रस्तावित राजनीतिक संगठन के संविधान और घोषणा-पत्र की रूपरेखा बना डाली परन्तु मेरे जम्मू से चले जाने के बाद इस दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई। फलस्वरूप राजनीतिक संगठन की आवश्यकता का एहसास होते हुए भी वहां समय पर राजनीतिक दल की स्थापना न हो सकी।

शेख अब्दुल्ला ने सत्ता-प्राप्ति के बाद श्रीनगर में 27 अक्तूबर सायंकाल जो पहला भाषण दिया उसीसे उसके इरादे स्पष्ट हो गए। मैंने उसी रात पण्डित प्रेमनाथ डोगरा को दूरभाष से शेख अब्दुल्ला के भाषण की रिपोर्ट दी और जम्मू में राजनीतिक दल बनाने का आग्रह किया।

शेख अब्दुल्ला मुझे और संघ को अपने इरादों की पूर्ति के रास्ते में रुकावट समझता था। इसलिए उसने सत्ता में आने के बाद मुझे जान से मारने की योजना बनायी। परन्तु प्रभु कृपा से मैं उसके पंजे से बच निकला और रोमांचक यात्रा के बाद 7 नवम्बर को जम्मू पहुंच गया। जम्मू पहुंचते ही मैंने जम्मू के राजनीतिक दल के गठन का काम शुरू कर दिया, परन्तु नागपुर से अनुमति के बिना पं० प्रेमनाथ डोगरा खुलकर उसमें शामिल नहीं हो सकते थे। इसलिए मैंने उनके बिना ही 15 नवम्बर, 1947 को प्रजा परिषद् का निर्माण कर डाला। संघ के साधारण कार्यकर्ताओं और अन्य लोगों ने इस काम में पूरा सहयोग दिया।

प्रजा परिषद् शीघ्र ही सारे जम्मू-क्षेत्र में लोकप्रिय हो गयी और इसकी शाखाएं सारे जम्मू-क्षेत्र में खुल गयीं। परिषद् का मुख्य उद्देश्य रियासत का शेष भारत के साथ पूर्ण विलय और जम्मू के लिए क्षेत्रीय स्वायत्तता था। यह जम्मू के लोगों के हित में भी था और भारत तथा भारत सरकार के भी हित में था। शेख अब्दुल्ला को प्रजा परिषद् का बढ़ता हुआ प्रभाव अखरने लगा।

30 जनवरी, 1948 को गांधी जी की हत्या का लाभ उठाकर शेख

अब्दुल्ला ने मुझे जम्मू-काश्मीर से निष्कासित कर दिया और संघ पर प्रतिबंध लगाकर पण्डित प्रेमनाथ डोगरा समेत इसके प्रमुख कार्यकर्ताओं को जेल में डाल दिया। परन्तु संघ के जो कार्यकर्ता प्रजापरिषद् के पदाधिकारी बन चुके थे, उन पर वह हाथ न डाल सका। एक लोकतान्त्रिक राजनीतिक दल होने के नाते वह प्रजा परिषद् पर प्रतिबन्ध न लगा सका। फलस्वरूप संघ के अनेक कार्यकर्ता प्रजा परिषद् में सक्रिय हो गये और इसका विस्तार और प्रभाव तेजी से बढ़ने लगा।

1949 में संघ से प्रतिबन्ध उठने के पश्चात् पण्डित-प्रेमनाथ डोगरा भी खुलकर प्रजा परिषद् में शामिल हो गये और उन्हें इसका अध्यक्ष चुन लिया गया। इस प्रकार प्रजा परिषद् को उचित नेतृत्व भी मिल गया और यह जम्मू-क्षेत्र में एक जीवन्त शक्ति बन गयी।

परन्तु इस बीच शेख अब्दुल्ला ने भी पण्डित नेहरू के अन्ध समर्थन के बल पर जम्मू में भी अपने पांव जमा लिये थे। पूर्व इसके कि प्रजा परिषद् अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कोई प्रभावी पग उठाती उसने इसके विरुद्ध दमनचक्र चला दिया। पण्डित नेहरू और कांग्रेस ने उसका पूरा साथ दिया। इसलिए शेष भारत से प्रजा परिषद् को प्रेस और जनमत का उचित और आवश्यक समर्थन न मिल पाया। सरदार पटेल और कांग्रेस के बहुत से सांसद, जिनसे मैंने सम्पर्क किया, शेख अब्दुल्ला के कुत्सित इरादों को जानते थे, परन्तु वे कुछ कर नहीं सकते थे। सरदार पटेल ने मुझे यह स्पष्ट कहा कि वे सब कुछ जानते हैं परन्तु कुछ कर नहीं सकते क्योंकि पण्डित नेहरू ने जम्मू-काश्मीर रियासत को उनके अधिकार-क्षेत्र से बाहर रखा हुआ है। उन्होंने मुझे यह भी आश्वासन दिया कि यदि पण्डित नेहरू उन्हें काश्मीर का मामला सौंपेंगे तो वे, "एक महीने में सब ठीक कर देंगे।" उन्हें वह अवसर दिया ही नहीं गया। परन्तु जब तक वे जीवित रहे, तब तक शेख अब्दुल्ला खुलकर अपना खेल न खेल सका।

1950 में सरदार पटेल के निधन के बाद शेख अब्दुल्ला खुलकर खेला। उसने प्रजा परिषद् के विरुद्ध विषवमन शुरू किया और इसे देश के जनमत से काटने का योजनाबद्ध प्रयत्न शुरू किया।

1951 में डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ के

निर्माण के बाद प्रजा परिषद् को शेष भारत में एक प्रभावी राजनीतिक सहयोगी मिल गया। डॉ० मुखर्जी ने जम्मू जाकर स्थिति का अध्ययन किया और पण्डित नेहरू तथा शेख अब्दुल्ला को पत्र लिखकर उन्हें प्रजा परिषद् की मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के लिए आग्रह किया। प्रजा परिषद् की दो मुख्य मांगें थीं। पहली मांग थी कि जम्मू-काश्मीर के सम्बन्ध में भारत के संविधान में डाली गयी अस्थायी धारा 370 को खत्म करके जम्मू-काश्मीर को अन्य राज्यों के स्तर पर लाया जाए। उसका नारा–

एक देश में दो विधान,
एक देश में दो निशान
एक देश में दो प्रधान
नहीं चलेंगे, नहीं चलेंगे।

सारे जम्मू में गूंजने लगे। इसकी दूसरी मांग थी कि जम्मू और लद्दाख क्षेत्रों को क्षेत्रीय स्वायत्तता दी जाय और शेख अब्दुल्ला की सत्ता काश्मीर घाटी तक सीमित कर दी जाय।

इन माँगों को मनवाने के लिए प्रजा परिषद् ने 1952 में एक अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया। दिसम्बर 1952 में भारतीय जनसंघ ने अपने कानपुर अधिवेशन में प्रजा परिषद् और उसके आन्दोलन को पूरा समर्थन देने का फैसला किया। बाद में हिन्दू महासभा और राम-राज्य परिषद् ने भी इसमें योगदान देने का निश्चय किया। इस प्रकार प्रजा परिषद् का आन्दोलन एक राष्ट्रीय आन्दोलन बन गया। दूसरी ओर पण्डित नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस ने शेख अब्दुल्ला का साथ दिया। इस आन्दोलन में जम्मू में प्रजा परिषद् के बीसियों कार्यकर्ता पुलिस की गोलियों से शहीद हुए और हजारों सत्याग्रही जेलों में डाल दिये गये। भारत सरकार ने भारतीय जनसंघ, हिन्दू महासभा और रामराज्य परिषद् के नेताओं को निवारक नजरबन्दी कानून के मातहत नजरबन्द कर दिया।

ज्यों-ज्यों यह आन्दोलन जोर पकड़ने लगा, शेख अब्दुल्ला खुलकर खेलने लगा। दमनचक्र के साथ-साथ वह काश्मीर को स्वतन्त्र राज्य घोषित करने की अपनी पुरानी इच्छा को कार्यरूप देने की दिशा में बढ़ने लगा। उसने कई ऐसे पग उठाये और वक्तव्य दिये जिससे कांग्रेस के लोग भी

सटपटा गये। परन्तु पण्डित नेहरू जो भारतीय जनसंघ के बढ़ते प्रभाव और डॉ0 मुकर्जी की बढ़ती लोकप्रियता को अपने लिए खतरा समझने लगे थे, शेख अब्दुल्ला को अपना समर्थन देते रहे।

1953 के शुरू में मेरे समेत अनेक नजरबन्दों को सुप्रीम कोर्ट ने निवारक नजरबन्दी से मुक्त कर दिया। तब यह फैसला किया गया कि डॉ0 मुकर्जी जम्मू-काश्मीर जाकर वहाँ की बिगड़ती स्थिति का अध्ययन करें। उस समय तक जम्मू-काश्मीर राज्य में दाखिल होने के लिए भारत सरकार से परमिट लेना पड़ता था, यह असंवैधानिक था। भारत के संविधान के अनुसार भारत का हर नागरिक देश के किसी भी भाग में बिना रोकटोक जा सकता है। इसलिए डॉ0 मुकर्जी ने बिना परमिट के जाने का फैसला किया। विख्यात साहित्यकार और तत्कालीन दिल्ली प्रदेश जनसंघ के अध्यक्ष वैद्य गुरूदत्त जी के साथ डा. मुखर्जी को माधोपुर में रावी का पुल पार करके जम्मू में प्रवेश करते ही अब्दुल्ला सरकार ने बन्दी बनाया। यह एक गहरी चाल थी। उस समय तक जम्मू-काश्मीर राज्य भारत की सुप्रीम कोर्ट के अधिकार से भी बाहर था। इसलिए वहाँ की गयी गिरफ्तारी को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती नहीं दी जा सकती थी।

डॉ0 मुकर्जी, वैद्य गुरूदत्त और टेकचन्द नाम के एक अन्य कार्यकर्ता को काश्मीर सरकार पकड़कर श्रीनगर ले गयी और वहाँ नजरबन्द कर दिया। उनकी गिरफ्तारी के विरूद्ध जम्मू-काश्मीर की हाईकोर्ट में हैबियस कार्पस रिट कर दी गयी और जनसंघ के सांसद और महान विधिवेत्ता बैरिस्टर उमाशंकर त्रिवेदी उस याचिका की पैरवी के लिए श्रीनगर गये। इसकी सुनवाई 23 जून को न्यायमूर्ति जियालाल किलम ने की। दलीलों के बाद यह लगा कि अदालत उन्हें मुक्त कर देगी। परन्तु देर हो जाने के कारण अदालत ने अपना निर्णय अगले दिन सुनाने का फैसला किया।

उसी दिन प्रातः बैरिस्टर त्रिवेदी को नीडो होटल में एक पुलिस अधिकारी और कुछ और लोग मिले। उन्होंने उन्हें कहा कि वे डॉ0 मुकर्जी को तत्काल रिहा करवाने का प्रयत्न करें अन्यथा उनकी हत्या कर दी जायगी। उनकी बात सही निकली। उसी रात को डॉ0 मुकर्जी की मेडिकल हत्या कर दी गयी। उन्हें रात के 11 बजे एक ऐसा इन्जेक्शन दिया गया

जो उनके लिए जानलेवा सिद्ध हुआ।

डॉ0 मुकर्जी की गिरफ्तारी और जेल में उनकी रहस्यमयी मृत्यु स्वतन्त्र भारत के इतिहास की एक अति घृणित घटना है। उस समय तक डॉ0 मुकर्जी पण्डित नेहरू के विकल्प के रूप में भारत के राजनीतिक मानस पर छा चुके थे और पण्डित नेहरू उनसे भय खाने लगे थे। जानकार सूत्रों के अनुसार उनको भारत की सुप्रीम कोर्ट के प्रभाव-क्षेत्र से बाहर जम्मू में गिरफ्तार किया जाना और जेल में ही उनकी जीवनलीला को समाप्त कर दिया जाना एक गहरे षड्यन्त्र का परिणाम था जिसमें शेख अब्दुल्ला ने कर्ता की भूमिका अदा की।

डॉ0 मुकर्जी के निधन के बाद सारे देश में उनकी मृत्यु की जाँच और प्रजा परिषद् की माँगों को स्वीकार करने की माँग जोर से उठने लगी। यदि पण्डित नेहरू और भारत सरकार में जरा भी राष्ट्रीय दृष्टि होती तो वह इस दुःखद घटना का लाभ उठाकर शेख अब्दुल्ला की नाक में नकेल डाल देती। परन्तु ऐसा करने के बजाय पण्डित नेहरू शेख अब्दुल्ला को और लम्बी डोर देते गये।

परन्तु शेख अब्दुल्ला और उसके विदेशी अभिभावक यह समझ गये कि डॉ0 मुकर्जी के बलिदान के बाद स्थिति बदलेगी और भारत सरकार को कुछ करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। इसलिए ऐसी स्थिति पैदा होने से पहले ही शेख अब्दुल्ला ने अपना हाथ दिखाने का फैसला किया।

अगस्त 1953 के शुरू में भारत सरकार को अपने गुप्तचरों से शेख अब्दुल्ला की काश्मीर को स्वतन्त्र राज्य घोषित करने की योजना का पता लग गया। इस पर पण्डित नेहरू पर दबाव पड़ने लगा कि वे समय रहते कारवाई करें। अन्ततोगत्वा शेख अब्दुल्ला के हाथ से सत्ता छीनने का फैसला किया गया। काश्मीर के तत्कालीन 'सदरे रियासत' अथवा राज-प्रमुख डॉ0 कर्णसिंह ने पहले शेख अब्दुल्ला सरकार को बर्खास्त किया और फिर उसे बन्दी बना लिया। शेख अब्दुल्ला पाक अधिकृत क्षेत्र के निकट गुलमर्ग में था। संभवतः वह स्वतन्त्रता की घोषणा के बाद पाकिस्तान में घुस जाने की तैयारी करके वहाँ गया था। बन्दी बनाये जाने से पहले उसने अनेक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज जलाकर नष्ट कर डाले।

शेख अब्दुल्ला के स्थान पर बख्शी गुलाम मोहम्मद को जम्मू-काश्मीर का नया प्रधानमन्त्री बनाया गया। बख्शी शेख अब्दुल्ला का साथी और उसके मन्त्रिमण्डल में उसका नम्बर दो था। उसने शेख का साथ देशभक्ति के कारण छोड़ा या सत्ताप्राप्ति के लिए, यह कहना कठिन है। परन्तु उसका सत्ता में आना भारत सरकार के लिए और प्रजा परिषद् के लिए अवसर था। वह अपने पाँव जमाने और जम्मू के लोगों को भी अपने साथ मिलाने के लिए उस समय सब-कुछ करने को तैयार था। उस समय संविधान की धारा 370 को हटाकर जम्मू-काश्मीर का शेष भारत के साथ पूर्ण विलय भी किया जा सकता था और जम्मू को क्षेत्रीय स्वायत्तता भी मिल सकती थी। परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। इसके दो कारण बने।

पहला कारण पण्डित नेहरू की दुर्बलता था। वे काश्मीर के सम्बन्ध में कोई निर्णायक पग उठाने के लिए तैयार नहीं थे। शेख अब्दुल्ला को सत्ता से हटाना और उसे बन्दी बनाना भी उनकी आत्मा के ऊपर एक बोझ था। यह एक कटु वास्तविकता थी कि वे राष्ट्रहित पर अपने व्यक्तिगत हितों और अपनी तथाकथित अंतर्राष्ट्रीय ख्याति को वरीयता देते थे। दूसरा कारण डॉ0 मुकर्जी के निधन के कारण जनसंघ में उचित नेतृत्व और प्रजा परिषद् के लिए उचित मार्गदर्शन का अभाव था। उस निर्णायक काल में प्रजा परिषद् का नेतृत्व अपनी उचित माँग मनवाने की स्थिति में होता हुआ भी उन्हें मनवा ना सका।

उस काल में काश्मीर के संबंद्ध में पण्डित नेहरू का प्रमुख सलाहकार और बख्शी का दायाँ हाथ पण्डित दुर्गा प्रसाद धर था। यदि वह चाहता तो उस समय बख्शी गुलाम मोहम्मद से कुछ भी करवा सकता था। यदि उस समय जम्मू को स्वायत्तता मिल जाती और धारा 370 हट जाती तो काश्मीर घाटी के काश्मीरी पण्डितों का भविष्य भी सुरक्षित हो जाता। दुर्गाप्रसाद धर ने जम्मू के लोगों को ही धोखा नहीं दिया अपितु काश्मीरी पण्डितों के भविष्य को भी गिरवी रख दिया।

तो भी इस आंदोलन और सत्ता के बदल से कुछ अच्छे परिणाम निकले तथा सारे रियासत को राज्यपाल और सुप्रीम कोर्ट का कार्यक्षेत्र जम्मू-काश्मीर तक बढ़ा दिया गया और प्रधानमंत्री को मुख्यमंत्री बना दिया

गया। काश्मीर के लाल झंडे के साथ भारत के तिरंगे को भी फहराने की भी व्यवस्था कर दी गयी।

1954 में जम्मू की प्रजा परिषद् का विलय भारतीय जनसंघ में कर दिया गया। इसमें प्रजा परिषद् के निर्माता के रूप में प्रमुख भूमिका लेखक को अदा करनी पड़ी। ऐसा करने का मुख्य कारण पंडित प्रेमनाथ डोगरा को जनसंघ का अध्यक्ष बनाना था डॉ0 मुकर्जी के निधन के बाद जनसंघ के पास कोई ऐसा नेता नहीं था जिसका नाम और प्रतिष्ठा सारे देश में हो। प्रजा परिषद् के आंदोलन के कारण पण्डित प्रेमनाथ डोगरा का नाम देश के कोने-कोने तक पहुँच चुका था। उनकी राष्ट्रभक्ति, प्रमाणिकता और सहृदयता की धाक संघ के कार्यकर्त्ताओं के दिलों पर बैठ चुकी थी। उन्हें जनसंघ का अध्यक्ष बनाने के लिए यह आवश्यक था कि प्रजा परिषद् जनसंघ में मिलती और या वे प्रजा परिषद् को छोड़ते। इसलिए प्रजा परिषद् को जनसंघ में मिलाने का फैसला करना पड़ा।

उस समय प्रजा परिषद के कुछ कार्यकर्त्ताओं को संदेह था कि जनसंघ में मिलने के बाद प्रजा परिषद् के जम्मू की स्वायत्तता संबंद्धी आग्रह में ढील ना आ जाए। मैंने उन्हें जनसंघ की ओर से आश्वस्त किया था कि ऐसा नहीं होगा। परंतु उनके संदेह ठीक निकले। स्थिति की सही जानकारी के अभाव में संघ के नेतृत्व की स्वायत्तता संबंद्धी माँग के विरोध में किसी टिप्पणी ने जनसंघ के कर्णधारों का रूख बदल दिया। उन्होंने भी जम्मू की स्वायत्तता की माँग का विरोध करना शुरू कर दिया। इसके परिणामस्वरूप जम्मू और उसके लोगों के क्षेत्रिय हितों की उपेक्षा का क्रम जारी रहा। यही कारण है कि प्रजा परिषद् के बहुत से पुराने कार्यकर्त्ता अब प्रजा परिषद् के जनसंघ में मिलाने के फैसले को जम्मू के लिए अभिशाप समझने लगे हैं।

1963 में कामराज प्लान के अन्तर्गत बख्शी गुलाम मोहम्मद द्वारा जम्मू-काश्मीर के मुख्यमंत्री का पद छोड़ने के बाद गुलाम मोहम्मद सादिक वहाँ का मुख्यमंत्री बना। मुख्यमंत्री बनने से पहले वह अपने कुछ प्रमुख साथियों के साथ लेखक का सहयोग प्राप्त करने के लिए उसके मकान पर आकर मिला। मैंने अपना समर्थन देने के लिए यह शर्त लगायी थी कि वह धारा 370 को हटाने के लिए वचन दे। उसने वचन दिया भी। बाद में जब

मैंने श्रीनगर में उसको इसकी याद दिलायी तो उसने बताया कि जम्मू-काश्मीर विधान-सभा के मुसलमान सदस्य इस मामले में उसे पहल नहीं करने देते। परंतु यदि भारत की संसद् इस धारा को हटा दे तो जम्मू-काश्मीर सरकार इसका विरोध नहीं करेगी। वास्तव में यह काम भारत की संसद का ही है। उसी ने धारा 370 संविधान में जोड़ी थी और वही उसे निकाल सकती है। जम्मू-काश्मीर विधानसभा या सरकार का इसमें कोई दखल नहीं। देश और जम्मू-काश्मीर का यह दुर्भाग्य है कि भारत सरकार और भारत की संसद ने इस मामले में अभी तक कुछ नहीं किया।

जैसा कि पूर्व अध्याय में बताया जा चुका है, 1962 के चीन के आक्रमण के फलस्वरूप काश्मीर घाटी के विभाजन की बात चली थी यदि उस समय काश्मीर के संबंध में कुछ फैसला हो जाता तो जम्मू को भी उससे लाभ होता।

1965 और 1971 के युद्धों में पाकिस्तान की पराजय में जम्मू के लोगों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। परंतु इन दो युद्धों में भारत की सैनिक जीत से जम्मू को कोई लाभ नहीं हुआ। उल्टे जम्मू के निकट का 'चिकन नेक' और छंब क्षेत्र पाकिस्तान को दे देने से जम्मू की सुरक्षा पर उल्टा प्रभाव पड़ा।

1972 में पण्डित प्रेमनाथ का 90 वर्ष की आयु में निधन हो गया। इसमें जम्मू में जो नेतृत्व की रिक्तता पैदा हुई वह आज तक भरी नहीं जा सकी। 1947 से लेकर 1972 तक का जम्मू का इतिहास वास्तव में पण्डित प्रेमनाथ डोगरा का इतिहास है। उन्होंने जम्मू और इसके लोगों को अपना सब-कुछ दिया। जम्मू उन्हें सदा याद रखेगा।

1975 में काश्मीर के कांग्रेसी मुख्यमंत्री मीर कासिम की मिली भगत से शेख अब्दुल्ला को दोबारा सत्ता में आने का अवसर मिल गया। जब श्रीमती इंदिरा गांधी शेख अब्दुल्ला को सत्ता सौंपने की बात सोच रही थीं तब मैंने उन्हें पत्र लिखकर चेतावनी दी थी ऐसा करना भारी भूल होगी। मैंने उन्हें लिखा कि शेख अब पहले से भी अधिक भारत विरोधी बन चुका है। उसमें किसी प्रकार की बदल की आशा करना दुराशा मात्र है। दुर्भाग्य से श्रीमती गांधी ने मेरी चेतावनी पर ध्यान न दिया।

इस बीच भारत की राजनीति में दो ऐसी घटनाएँ हुई जिसमें जम्मू-काश्मीर और विशेष रूप में इसके जम्मू-क्षेत्र पर भी गहरा प्रभाव छोड़ा। एक थी दीनदयाल उपाध्याय की रहस्यमयी हत्या के बाद भारतीय जनसंघ का नेहरूवादियों के हाथ में पड़ जाना जो इंदिरा गांधी के इशारे पर नाचने लगे। उन्होंने न केवल जनसंघ के निर्माताओं को जनसंघ से चुन-चुन कर निकालना शुरू कर दिया अपितु जम्मू-काश्मीर और शेख अब्दुल्ला के प्रति भी अपना रवैया बदल डाला। जम्मू को इससे बहुत हानि हुई। दूसरी थी संघ और जनसंघ के नेतृत्व का जयप्रकाश नारायण को अपना नया मसीहा मानना। जे0 पी0, शेख अब्दुल्ला के अंध समर्थक थे। इस मामले में वे पण्डित नेहरू को भी मात देते थे। शेख अब्दुल्ला को हर कुकृत्य में उनका आशीर्वाद प्राप्त रहता था। जे0 पी0 की झोली में जाने के बाद इन संस्थाओं के कर्णधारों ने जम्मू-काश्मीर की राष्ट्रवादी जनता की उपेक्षा करनी शुरू कर दी।

आपातकाल के बाद जनता पार्टी के सत्ता में आने के बाद जम्मू-काश्मीर में भी लोकसभा और विधानसभा के नये चुनाव हुए। जम्मू से पहली बार जनसंघ का एक कार्यकर्त्ता बलदेवसिंह को लोकसभा के लिए चुना गया। परंतु विधानसभा में शेख अब्दुल्ला को पूर्ण बहुमत मिल गया और वह मुख्यमंत्री बना रहा। विपक्ष में जनता पार्टी थी और इसका मुख्य घटक जनसंघ था। जनता पार्टी के टिकट पर जम्मू से दस और काश्मीर घाटी से केवल दो सदस्य चुने गये थे। परंतु जनता पार्टी ने अपना नेता काश्मीर के शेख अब्दुल्ला के सहयोगी मौलाना मसूदी को बनाया। इस प्रकार जनता पार्टी ने भी मुस्लिम तुष्टीकरण और काश्मीर घाटी के तुष्टीकरण की नीति जारी रखी।

जनता पार्टी की सरकार में जनसंघ मुख्य घटक था। इस घटक के लोकसभा में लगभग सौ सदस्य थे। यदि यह घटक चाहता तो जनता सरकार धारा 370 को समाप्त कर सकती थी। श्री मोरारजी देसाई और चौधरी चरण सिंह कभी भी शेख अब्दुल्ला और धारा 370 के समर्थक नहीं रहे थे। परंतु जम्मू-काश्मीर रियासत में जनता पार्टी का मुख्य आधार जनसंघ ही था। इसलिए यदि जनसंघ का नेतृत्व पहल करता तो जम्मू-काश्मीर

संबंधी पण्डित नेहरू और इंदिरा गांधी की भूलों का परिमार्जन किया जा सकता था। परंतु हुआ इसके बिल्कुल उलट।

जनता सरकार ने मुस्लिम तुष्टीकरण के मामले में कांग्रेस को भी मात दे दी। इसका कुप्रभाव जम्मू-काश्मीर पर भी पड़ा। शेख अब्दुल्ला के तेवर और चढ़ गये।

1980 में इंदिरा गांधी के पुन: सत्ता में आने से शेख अब्दुल्ला को और शह मिल गयी। तब उसने जम्मू-काश्मीर में पाकिस्तानी तत्त्वों को वैद्य रूप में बसाने के लिए विधानसभा में जम्मू-काश्मीर पुनर्वास विधेयक पेश कर दिया। भारतीय जनसंघ का जो भाग तब तक दलबदलू बनकर भाजपा बन चुका था, उसने पहले इस खतरनाक विधेयक पर चुप्पी साधी रखी परंतु जब सारे जम्मू में इसके संबंध में हाय-तौबा मची तो उन्हें भी इसके विरूद्ध अपना मुँह खोलना पड़ा। वह विधेयक अब पास हो चुका है।

1983 के विधानसभा के चुनावों में जम्मू की जनता ने भाजपा को इस विश्वासघात की पूरी सजा दी। इसके प्रतिनिधी के दक्षिण जम्मू हल्के से, जो पण्डित डोगरा का जेब का हल्का माना जाता था और जहाँ से उनके निधन के बाद वहां का अकेला मुसलमान शेख अब्दुल्ला रहमान भी जनसंघ के टिकट पर जीत गया था, की भी जमानत जब्त हो गयी।

जम्मू-काश्मीर विधानसभा में 75 स्थान हैं। जनसंख्या के अनुपात में जम्मू को इसमें से 38 स्थान मिलने चाहिए। परंतु जम्मू को अभी तक केवल 32 स्थान दिये गये इनमें से 26 के लगभग हिंदु-बहुल हलके हैं और शेष मुस्लिम-बहुल। 1983 के चुनाव में कांग्रेस ने इनमें से 32 स्थान जीते। इसे काश्मीर घाटी से केवल 3 स्थान मिले। जम्मू के हिंदुओं ने इसे पूरा समर्थन दिया। उन्हें आशा थी कि इंदिरा कांग्रेस के नेतृत्व में दिल्ली की सत्ता रूढ़ कांग्रेस दल जम्मू के हितों की रक्षा करेगा, परंतु हुआ इसके उलट। कांग्रेस ने अपनी जम्मू-काश्मीर शाखा और कांग्रेस विधायक दल का नेतृत्व काश्मीरी मुसलमानों को सौंप दिया। इसलिए जम्मू की पहले से भी अधिक उपेक्षा होने लगी। फारूख अब्दुल्ला राष्ट्रविरोधी तत्त्वों को अपने पिता की तरह ही बढ़ावा देने लगा। 1984 में फारूख को हटाकर जी0 एम0 शाह को मुख्यमंत्री बनाया गया। उसकी गद्दी पूरी तरह कांग्रेस के विधायकों के

समर्थन पर खड़ी थी। इसलिए कांग्रेस इस स्थिति में थी कि वह शाह सरकार पर दबाव डाल कर जम्मू-काश्मीर में वांछित बदलाव कर डाले और जम्मू तथा लद्दाख क्षेत्रों को स्वायत्तता दे दे।

जम्मू-काश्मीर के दो राज्यपालों बी0 के0 नेहरू और जगमोहन तथा भारत के राष्ट्रपति और गृहमंत्री के साथ लेखक ने अनेक बार जम्मू-काश्मीर की स्थिति को सुधारने के लिए, इसके पुर्नगठन और धारा 370 को हटाने के संबंध में विस्तृत चर्चा की। वे इस बात को मानते थे कि जम्मू के साथ अन्याय हुआ है और धारा 370 को हटाना और रियासत का पुर्नगठन करके काश्मीर, जम्मू और लद्दाख को अलग-अलग स्वशासित क्षेत्र बनाने से जम्मू-काश्मीर की स्थिति को सुधारने और उसे राष्ट्रधारा में लाने के लिए अनिवार्य है। परन्तु इस संबंध में कुछ किया नहीं गया।

भारत और पाकिस्तान के अंदर और बाहर के हालात ने जम्मू-काश्मीर राज्य को फिर अन्तर्राष्ट्रीय षड्यंत्रों और पाकिस्तानी एजेंटों का अखाड़ा बना दिया। पाकिस्तान ने जम्मू सीमा पर विशेष रूप में दबाव डाला। उसने जम्मू से पुँछ तक की सारी सीमा पर सैनिक अड्डों और हवाई पट्टियों का जाल बिछा दिया। भारत सरकार का नेतृत्व एक सहमे हुए अपरिपक्व और अनुभवहीन राजीव गांधी के हाथ में आ चुका था। उसे अपनी जान की रक्षा की चिंता भारत के राष्ट्रीय हितों की रक्षा की चिंता से अधिक थी। इसलिए भारत सरकार किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में आ गयी। देश में और विशेष रूप से जम्मू में कोई विरोध पक्ष रहा नहीं। वैचारिक दृष्टि से चंद्रशेखर और आडवाणी की दोनों जनता पार्टियाँ कांग्रेस की बी0 टीम मात्र बन गयी।

जम्मू में स्थिति और भी खराब हो गयी। वहाँ का राष्ट्रवादी हिन्दू सही नेतृत्व के अभाव में जात-बिरादियों में बँटता चला गया। काश्मीर सरकार जम्मू में मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ाने में लग गयी। इसने जम्मू के इर्द-गिर्द और अन्य सामरिक महत्त्व के स्थानों पर मुसलमानों की बस्तियाँ बसाने की योजना बनाई। डॉ0 कर्णसिंह जो पण्डित प्रेमनाथ डोगरा के निधन के बाद जम्मू क्षेत्र का स्वाभाविक नेता बन सकता था, अपनी प्रतिष्ठा खो बैठा। वह इस बात को भूल गया कि यदि जम्मू में उसका स्थान नहीं रहेगा

तो वह राष्ट्रीय स्तर पर भी कुछ नहीं कर पायेगा।

इन हालात में काश्मीर घाटी के साथ-साथ जम्मू-काश्मीर का भविष्य भी संदिग्ध हो गया। यदि इसका हिंदू चरित्र खत्म हो गया और उसकी हिंदू असंगठित रहा तो इसका भी इस्लामीकरण हो जाएगा और यह भी भारत से कट जाएगा। सारे हिंदुस्तान के राष्ट्रीय हितों का तकाजा है कि जम्मू की सुध ली जाए। इसके लोगों में आत्मविश्वास पैदा किया जाए और इसे काश्मीर घाटी के उपनिवेशवाद से अविलंब मुक्त किया जाए। इसके लिए आवश्यक है कि जम्मू के लोगों का अपना प्रभावी राजनीतिक संगठन हो। तथाकथित राष्ट्रीय दलों ने अपना अराष्ट्रीय दृष्टिकोण और जम्मू के प्रति उपेक्षा नीति के कारण वहाँ अपनी विश्वसनीयता और प्रासंगिकता खत्म कर दी है। देशभर के राष्ट्रवादी, हिंदुत्ववादी तत्त्वों का कर्त्तव्य है कि वे जम्मू के अलग अस्तित्व को स्वीकार करके इसे अपने पाँव पर खड़ा होने और भारत के अभिन्न अंग के रूप में अपनी हिंदू पहचान बनाये रखने के लिए अपना योगदान दें।

लद्दाख

लघु तिब्बत के नाम से जाना जाने वाल लद्दाख युद्ध विराम रेखा द्वारा विभाजित जम्मू एवं काश्मीर राज्य के भारतीय भाग का तीसरा मुख्य क्षेत्र है। यह क्षेत्रफल में सबसे बड़ा और जनसंख्या में सबसे छोटा है। इसका क्षेत्रफल तीस हजार वर्गमील से अधिक तथा जनसंख्या दो लाख से भी कम है। यह बौद्ध-बहुल क्षेत्र है। यह दक्षिण में जम्मू क्षेत्र के पाडर उपभाग से उत्तर में काराकोरम की पर्वत श्रृंखला तक तथा पूर्व में तिब्बत से पश्चिम में राज्य के बलतिस्तान क्षेत्र तक फैला हुआ है। इसमें सिन्धु तथा इसकी सहायक नदियाँ बहती हैं। अपने स्रोत मानसरोवर झील से निकल कर सिन्धु नदी पश्चिम की ओर बहती हुई दमचक के समीप लद्दाख में प्रवेश करती है। लद्दाख के बाद बलतिस्तान और गिलगित क्षेत्रों में से गुजरती हुई यह महान नदी हिमालय की पश्चिमी श्रृंखला को काटती हुई दक्षिण में पंजाब में प्रवेश करती है। लद्दाख की राजधानी लेह 11000 फीट की ऊँचाई वाले संसार के सबसे ऊंचे निवास-स्थलों में से एक है।

1836 में जोरावरसिंह द्वारा विजय किये जाने से पूर्व लद्दाख पर डुन्डप नामग्याल नामक बौद्ध राजा राज्य करता था। लद्दाख तथा तिब्बत की पारम्परिक सीमा का निर्णय 2 आश्विन 1896 विक्रमी सितंम्बर (1842 ई0) को दलाई लामा के प्रतिनिधि तथा महाराजा गुलाबसिंह के मध्य हुई सन्धि द्वारा हुआ था। इसके अनुसार दोनों पक्षों ने लद्दाख तथा इसके पड़ोसी देशों की परम्परागत और " पुरातन समय से चली आ रही'' सीमा को विधिवत् मान्यता दी। इस सन्धि से स्पष्ट है कि उस समय लद्दाख तथा तिब्बत की सीमा सर्वविदित थीं और दोनो राज्यों को मान्य थीं।

डोगरा शासकों ने लद्दाख की पृथक् सांस्कृतिक पहचान को सम्मान दिया तथा उनके शासन में लेह, मध्य एशिया के व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र बन गया। लद्दाख के लोगों की भाषा तिब्बती से मिलती-जुलती है। यह बोधि कहलाती है तथा देवनागरी से मिलती-जुलती लिपि में लिखी जाती है। इस सारे क्षेत्र में बड़े-बड़े बौद्ध विहार हैं। वे लद्दाख की कला, संस्कृति तथा ज्ञान के केन्द्र हैं। डोगरा राजकाल में इनकी अच्छी देखभाल की जाती थी और लद्दाख की पृथक् बौद्ध पहचान को बनाये रखा गया था।परिणामस्वरूप लद्दाखियों में डोगरा शासकों के प्रति कृतज्ञता तथा निष्ठा का भाव था।

जब अंग्रेजों के भारत को विभाजित करने तथा छोड़ने और देशी राज्यों के अनिश्चित भविष्य की गूँज लद्दाख तक पहुँची तो लद्दाखी लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाली एकमात्र संस्था 'लद्दाख बौद्ध संगठन' ने राज्य प्रजा सभा के माध्यम से महाराजा हरिसिंह को एक ज्ञापन दिया। इस प्रतिवेदन में भारत विभाजनजनक स्थिति के जम्मू-काश्मीर रियासत पर सम्भावित प्रभाव का विवेचन करने के बाद लद्दाख के भविष्य के सम्बन्ध में महाराजा के सामने तीन वैकल्पिक सुझाव रखे गये थे। वे थे-

1. लद्दाख का काश्मीर घाटी के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध बनाये रखे बिना, महाराजा इसका शासन सीधा अपने हाथ में लें।

2. अथवा लद्दाख को हिन्दू बाहुल्य वाले जम्मू के साथ विलय कर दिया जाय परन्तु लद्दाखियों की विशिष्ट पहचान कायम रखने और उनके अधिकारों और हितों के लिए विशेष व्यवस्था की जाय।

3. लद्दाख को पूर्वी पंजाब में मिलने दिया जाय। तब लद्दाख के साथ

लगने वाला लाहौल-स्पिती क्षेत्र पूर्वी पंजाब में पड़ता था।

महाराजा हरिसिंह इस ज्ञापन का कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दे सके। संभव है इसका कारण वह आकस्मिक घटना-चक्र था जिसके कारण वे अपने ही राज्य में सत्ताहीन और अप्रभावी हो चुके थे।

गिलगित तथा बलतिस्तान पर अधिकार करने के बाद पाकिस्तान ने 1948 में लद्दाख को विजय करने का भरपूर प्रयास किया। परन्तु स्थानीय लोगों ओर उनके द्वारा गठित लद्दाख स्काउट नाम की सैनिक टुकड़ी के दृढ़ अवरोध तथा भारतीय सेना द्वारा योजिला दर्रे और कारगिल को पुनः हस्तगत करने के कारण उनकी योजना असफल हो गई। युद्धविराम के बाद सारा लद्दाख और बल्तिस्तान की कारगिल तहसील भारत के अधिकार में रह गयी। कारगिल का कुछ भाग पहले भी लद्दाख राज्य का अंग था, परन्तु उसके अधिकांश लोग मुसलमान थे।

शेख अब्दुल्ला की सरकार ने बौद्ध धर्मावलम्बी लद्दाख तथा मुस्लिम प्रधानता वाले कारगिल दोनों को मिलाकर एक प्रशासनिक क्षेत्र बना दिया। उसकी नीतियों, उसके भेजे गये काश्मीरी मुसलमान अधिकारियों के आचरण तथा संयुक्त राष्ट्र द्वारा जनमत संग्रह पर आग्रह करने के कारण लद्दाखी अपने भविष्य के सम्बन्ध में फिर चिन्तित हो गये। उन्हें शेख अब्दुल्ला पर विश्वास नहीं था इसलिए उन्हें अपना भविष्य अनिश्चित और अन्धकारमय लगने लगा। इसलिए उन्होंने भारत के प्रधानमन्त्री पण्डित नेहरू को लद्दाख बौद्ध संगठन के अध्यक्ष छेवांग रेगजिन के माध्यम से एक नया ज्ञापन भेजा। महाराजा को भेजे गये ज्ञापन के प्रस्तावों तथा उन पर महाराजा द्वारा उत्तर न देने की चर्चा करने के बाद इस ज्ञापन में भारत सरकार के विचारार्थ स्थिति का निम्नलिखित विश्लेषण और सुझाव प्रस्तुत किये गये थे-

"हमें जम्मू-काश्मीर राज्य में निवास करने वाले अन्य लोगों से पृथक् अपने भविष्य को निर्धारित करने का अधिकार हो। निम्नलिखित बातों से यह भी स्पष्ट है कि शीघ्र होने वाले जनमंत-संग्रह का यदि वह पाकिस्तान के पक्ष में जाता है तो, कोई प्रभाव हम पर नहीं पड़ सकता।

1. राष्ट्रीयता की परिचायक परिभाषा-समान जाति, पंथ, भाषा और

संस्कृति-के अनुसार हम एक पृथक उपराष्ट्र हैं। जम्मू-काश्मीर राज्य के अन्य क्षेत्रों से हमें बाँधने वाली एकमात्र कड़ी साँझा सिंहासन है। जबकि इण्यिन नेशनल कांग्रेस मुसलमानों को, जिनके भारत के शेष लोगों के साथ मजहब के अतिरिक्त सब कुछ साँझा है, एक अलग राष्ट्र की मान्यता दे चुकी, भारत सरकार को हमें अलग राष्ट्र के रूप में मान्यता देने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए।

2. शेख अब्दुल्ला ने अपना दावा अमृतसर की सन्धि के आधार पर बनाया है। केवल काश्मीर घाटी ही इस सन्धि से प्रभावित हुई थी। अब जबकि जम्मू-काश्मीर के महाराजा ने अपनी सत्ता अपने राज्य के लोगों को हस्तान्तरण करने का फैसला किया है, शेख अब्दुल्ला और काश्मीर के लोगों को अपने काश्मीर क्षेत्र का शासन जैसे वे चाहें चलाने का अधिकार मिल गया है। परन्तु उन्हें लद्दाख पर जिसका महाराजा के साथ सम्बन्ध काश्मीर से बहुत पहले 1834 की सन्धि से कायम हुआ था, और जो हर दृष्टि से एक पृथक् राष्ट्र है, अपना शासन कायम करने का कोई अधिकार नहीं है। 1834 की सन्धि में काश्मीर और उसके लोगों का जो महाराजा के अधिकार में 12 वर्ष बाद 1846 की अमृतसर सन्धि के द्वारा आये किसी प्रकार का दखल नहीं है।

3. हमारे द्वारा माँगा जाने वाला आत्मनिर्णय का अधिकार बलतिस्तान और कारगिल का जो भाग 1846 के पूर्व डोगरों ने विजय करके अपने राज्य में शामिल किया था, पर लागू नहीं होता। वे लोग मजहब और संस्कृति की दृष्टि से काश्मीर के बहुमत लोगों से जुड़े हुए हैं। हम यह भी बता देना चाहते हैं कि 1834 में जब जोरावरसिंह ने लद्दाख को फतह किया उस समय लेह और कारगिल का कुछ क्षेत्र लद्दाख के राजा के राज्य में पड़ता था। बलतिस्तान उस समय लद्दाख से अलग था और वहाँ अनेक छोटे-छोटे राजाओं का राज था।

यदि जनमत का परिणाम भारत के पक्ष में निकले तो हम काश्मीर राज्य के अन्य क्षेत्रों और लोगों की अपेक्षा भारत के और अधिक निकट आना चाहेंगे और यदि जनमत का परिणाम भारत के विरूद्ध आया तो हमारा फैसला है कि हमें शेष राज्य से अलग कर दिया जाय। हमारा

पाकिस्तान में जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

हमने भारत के साथ पूर्ण विलय का फैसला कर रखा है। परन्तु हमारे फैसले की कीमत तभी है जब भारत उसे स्वीकार करने को तैयार हो। हम यह पेशकश अपने हित में कर रहे हैं। हमारी यह मान्यता है कि हमारी मुक्ति भारत के साथ रहने में ही है। परन्तु हमारी प्रार्थना स्वीकार करने से भारत भी घाटे में नहीं रहेगा। लेह तहसील का क्षेत्रफल 23,000 वर्ग मील है। यदि इसके साथ कारगिल तहसील के बौद्ध-बहुल--जनसकार, बोधखरबो, मलबेक, फुकर, चारचक, गररचम और जम्मू को पाडर और किश्तवाड़ जोड़ दिया जाय तो इस सारे बौद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल 33,000 वर्गमील होगा। यह ठीक है कि यह क्षेत्र इस समय अविकसित है और इसका बहुत-सा भाग वीरान है। परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि इस क्षेत्र की आर्थिक क्षमता अथाह है और भारत जैसे महान देश के साथ मिलने पर इसे फले-फूले उपवन में बदला जा सकता है और यह अथाह धन और शक्ति का स्रोत बन सकता है। इसके व्यापारिक और सामरिक महत्त्व की भी अनदेखी नहीं की जा सकती। तिब्बत और चीन के साथ लेह की सीमाएँ मिलती हैं और लेह नगर मध्य एशिया का जीवमान केन्द्र स्थान है।

हमारी पेशकश में ऐसी कोई बात नहीं जो भारत की अन्तर्राष्ट्रीय नीति और आदर्शवाद के साथ मेल न खाती हो। इससे बढ़कर हम यह भी कह सकते हैं कि यह भारत के आदर्शों और घोषित नीति के साथ मेल खाती है। भारत सरकार अनेक बार घोषणा कर चुकी है कि यह सभी राष्ट्रों के आत्म-निर्णय के अधिकार को स्वीकार करती है। क्या हम एक ऐसा राष्ट्र नहीं है जिसके आत्मनिर्णय के अधिकार की रक्षा करना भारत का कर्तव्य है।

तिब्बत भारत की सांस्कृतिक दुहिता है। हम भारतरूपी माँ की छाती से लिपटना चाहते हैं ताकि इससे हमें जीवन-शक्ति मिल सके। भारत ने हमको सब कुछ दिया है, विशेष रूप में हमारी सबसे मूल्यवान धरोहर हमारा धर्म और संस्कृति भारत की देन है। इसी कारण हम भारत के अधिक निकट आना चाहते हैं। भारत के राष्ट्रीय ध्वज पर अंकित अशोक चक्र जो उसकी मानव मात्र के लिए सद्भावना और मैत्री का प्रतीक है, हमें

भारत की ओर अनायास की आकर्षित करता है। क्या महान भारत माता अपने सबसे अधिक दुर्बल और व्यथित बच्चों को अपनी गोद में लेने से इन्कार करेगी? हमारा मातृप्यार हमें उसके निकट जाने के लिए बाध्य कर रहा है।

महोदय, हमारे भविष्य से सम्बन्धित इस महत्त्वपूर्ण विषय पर हमारे पूर्व-प्रतिवेदन का उत्तर न मिलने के कारण हम बहुत दुखी हैं, इसलिए आपसे सविनय प्रार्थना करते हैं कि हमारे इस प्रार्थना-पत्र का उत्तर अवश्य दीजिये।''

यह ज्ञापन तथ्यपूर्ण, स्पष्ट और वस्तुपरक है। इससे इसे तैयार करने वालों का विश्वास, साहस, विचारों की स्पष्टता और देशभक्ति का भाव टपकता है। इसका यथार्थवाद स्फूर्तिदायक है।

गत् पांच दशकों में लद्दाख के लोगों का अनुभव जम्मू के लोगों जैसा ही है। लद्दाख का बौद्ध बहुमत लगातार कम होता जा रहा है। प्रशासन का रूख उनके प्रति असहानुभूतिपूर्ण है। फलस्वरूप बौद्ध लद्दाखियों को उन्हीं के घर में द्वितीय श्रेणी का नागरिक बना दिया गया है। परन्तु जम्मू के लोगों के विपरीत लद्दाख के बौद्धों ने अधिक दृढ़ता तथा संघर्षशीलता दर्शायी है। वे लद्दाख के स्वायत्त शासन के लिए लगातार शान्तिपूर्ण आन्दोलन चलाते रहे हैं। उन्हें अच्छे नेतृत्व का लाभ प्राप्त है। लद्दाख का पूजनीय मुख्य लामा, कुशक बकुल तथा राज्य विधान सभा और भारतीय संसद् में उनके प्रतिनिधियों ने लद्दाखी जनता के दृष्टिकोण को प्रभावी ढंग से पेश करने का कोई अवसर नहीं छोड़ा। उन्हें हाल ही में कुछ सफलता भी मिली है। कारगिल तहसील समेत लद्दाख को संविधान की अनुसूची VI में सम्मिलित कर लिया गया है परन्तु उनकी लद्दाख को स्वायत्त केन्द्र शासित प्रदेश बनाने की माँग अभी तक नहीं मानी गई है।

1947 के बाद काश्मीरी मुसलमानों के बाहुल्य वाली सरकार की उपेक्षा तथा लापरवाही ने चीन को लद्दाख के अकसाई चिन भाग में से एक सड़क बनवाने का अवसर दे दिया। यह सड़क तिब्बत को चीन के सिंकियांग भाग से मिलाने का सबसे छोटा मार्ग है। 1962 में भारत पर आक्रमण के फलस्वरूप चीन इस अकसाई चिन क्षेत्र को अपने अधिकार में ले चुका है।

शेख अब्दुल्ला तथा श्रीनगर की गद्दी पर उसके उत्तराधिकारी लद्दाख की सांस्कृतिक पहचान की सुरक्षा करने तथा वहाँ की जनता को राजनीतिक न्याय देने की अपेक्षा इसके इस्लामीकरण में अधिक रूचि लेते रहे हैं। इसके कारण लद्दाख में बेचैनी व्याप्त है। लद्दाख के लोगों के लिए आर्थिक विकास की अपेक्षा अपनी विशिष्ट जीवन-पद्धति और सांस्कृतिक पहचान को बनाये रखना अधिक महत्त्वपूर्ण है।

हिन्दुस्तान की सुरक्षा की दृष्टि से अब लद्दाख क्षेत्र जम्मू-काश्मीर राज्य का सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बन चुका है। चीन इसके एक भाग को दबाए बैठा है। पाकिस्तान का चीन के साथ गठजोड़ है। यदि पाकिस्तान लद्दाख के शेष भाग पर अपना अधिकार कर ले तो वह काश्मीर घाटी की उत्तर और पूर्व से घेराबन्दी कर सकेगा और केवल काश्मीर घाटी ही नहीं अपितु जम्मू, हिमाचल प्रदेश और शेष भारत की सुरक्षा भी खतरे में पड़ जाएगी।

गत पचास वर्षों से लद्दाख की जनसंख्या में बौद्धों का अनुपात लगातार कम हो रहा है। काश्मीर सरकार ने वहाँ पर चीन से भागकर आये हुए मुसलमान कज्जाक तो बसाए हैं पर तिब्बत से आये बौद्ध शरणार्थियों को वहाँ बसने नहीं दिया। काश्मीर मुस्लिम अधिकारी और व्यापारी बहुविवाह की छूट के कारण बौद्ध स्त्रियों से विवाह करके वहाँ मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ा रहे हैं। यदि यही स्थिति रही तो कुछ वर्षो में लद्दाख भी मुस्लिम-बहुल क्षेत्र बन जाएगा। ऐसा होने पर पाकिस्तान काश्मीर घाटी की तरह लद्दाख पर भी दावा करने लगेगा।

सम्भवत: समाजवाद के प्रभाव के कारण भारत सरकार और भारत के अधिकांश तथाकथित बुद्धिजीवी और लेखक हर समस्या को आर्थिक दृष्टि से देखने के अभ्यस्त हो गये हैं। वे समझते हैं कि यदि किसी क्षेत्र का आर्थिक विकास हो जाय तो उसकी और कोई समस्या नहीं रहती। परन्तु सोचने का यह ढंग गलत है। अर्थ का महत्त्व है परन्तु मनुष्य केवल रोटी के लिए नहीं जीता। उसकी और आवश्यकताएँ भी होती हैं। लद्दाखियों की समस्या अपनी बौद्ध पहचान और अलग अस्तित्व को बचाने की है। वे किसी हालत में पाकिस्तान के अधिकार या मुस्लिम प्रभाव में नहीं जाना चाहते। लद्दाख का द्रुतगति से आर्थिक विकास करने से उनकी इस मूल समस्या का, जो मुख्यत:

सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक है, हल होने वाला नहीं। यदि उन्हें राजनीतिक दृष्टि से स्वायत्तता मिल जाय और वे अपने भाग्य के स्वयं मालिक बन जाएँ तो वे अपनी आर्थिक समस्याओं का हल भी ढंग से कर लेंगे। इसलिए लद्दाख के लोगों के हित में और भारत सरकार की एकता और सुरक्षा के हित में पहली आवश्यकता यह है कि लद्दाख को इस्लाम के विस्तारवाद की आंधी से बचाया जाए और इसका बौद्ध-बहुल चरित्र बनाये रखा जाए। उसके लिए यह आवश्यक है कि इसे राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टि से काश्मीर घाटी से अलग किया जाए और इसे काश्मीर के मुस्लिम प्रधान शासन से मुक्त किया जाए। यदि लद्दाख और कारगिल के बौद्ध-बहुल अनुभागों तथा जम्मू-क्षेत्र के पाडर को मिलाकर एक इकाई बना दी जाय और इसे केन्द्रशासित प्रदेश बना दिया जाय तो यह उद्देश्य पूरा हो जायगा और इसके आर्थिक विकास की गति भी तेज हो जायगी। इससे भी बेहतर होगा कि इस बड़े क्षेत्र को हिमाचल प्रदेश के लाहौल, पांगी और स्पिती क्षेत्र के साथ मिलाकर एक बड़ा प्रदेश बना दिया जाय।

परन्तु यदि भारत सरकार के कर्णधार और भारत की राष्ट्रवादी जनता और नेता समय पर न जागे तो लद्दाख भी भारत के हाथ से निकल जाएगा और वहाँ के बौद्ध लोगों की दशा वही होगी जो इस समय बंगला देश में हिन्दुओं की है, वहां की मुस्लिम सरकार उन्हें जड़मूल से ही नष्ट करने पर तुली हुई है।

लद्दाख में सियाचीन ग्लेशियर पर अधिकार करने के लिए पाकिस्तान जो सामरिक गतिविधियाँ कर रहा है उससे भारत के शासकों और नेताओं को पाकिस्तान के इरादों का ज्ञान हो जाना चाहिए। हमारे जवान और अफसर इस क्षेत्र की बड़ी बहादुरी से रक्षा कर रहे हैं। परन्तु यदि देश का राजनीतिक नेतृत्व दिवालिया हो और उसमें राष्ट्रीय दृष्टिकोण और यथार्थवाद का अभाव हो तो वह बहादु से बहादुर सेना को नकारा बना देता है और सैनिक विजय को राजनीतिक हार में बदल देता है। 1971 के युद्ध और शिमला सन्धि का अनुभव इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

इस समय भारत सरकार की गलत नीतियाँ और पाकिस्तान तथा उसके एजेण्टों की बढ़ती हुई गतिविधियाँ और काश्मीरी प्रशासन की दोहरी

निष्ठा के कारण न केवल काश्मीर घाटी अपितु जम्मू और लद्दाख का भविष्य भी अनिश्चित हो चुका है।

1999 के कारगिल युद्ध में जहाँ कारगिल और द्रास तथा लद्दाख में बसे काश्मीरी मुसलमानों की भूमिका अति संदिग्ध रही वहाँ लद्दाख के बौद्धों ने विशेष रूप में लद्दाखी युवकों की भूमिका अति प्रशंसनीय रही। उन्होंने न केवल कारगिल की चोटियों पर लड़ने वाले भारतीय सैनिकों के लिए रसद, खाना और गोला-बारूद पहुँचाने का काम किया अपितु उनकी माताओं-बहनों ने जवानों के लिए रोटियाँ सेंकी और खाना बनाया।

पाकिस्तान का कारगिल की चोटियों पर पुनः अधिकार करने के पीछे एक उद्देश्य काश्मीर घाटी को पूरब की ओर से घेरना था और दूसरा उद्देश्य श्रीनगर योजिला द्रास कारगिल सड़क पर अधिकार करके सियाचिन में लड़ने वाले भारतीय जवानों की रसद काटना और लद्दाख पर अधिकार करना था। इसलिए उस घटना ने लद्दाख के बौद्ध लोगों में फैले डर और अपने भविष्य के संबंध में संदेह को और पक्का कर दिया है। हाल ही में जनसकार क्षेत्र के एक बौद्ध मठ पर काश्मीरी आतंकवादियों का हमला और तीन भिक्षुओं की हत्या से उनका डर और काश्मीरी मुसलमानों और फारूख अब्दुल्ला की सरकार पर उनका संदेह और पक्का हो गया है। अब वे लद्दाख को काश्मीर घाटी से अलग करने, जनसकार को लद्दाख के साथ पुनः जोड़ने और लद्दाख को भारत का केंद्र शासित राज्य बनाने के अपने संकल्प और मांग पर और दृढ़ हो गये हैं। उन्हें भारत सरकार का उनके प्रति उपेक्षापूर्ण रवैया और अधिक खलने लगा है और उनमें से कुछ लोग चीन की ओर भी देखने लग पड़े हैं। इसलिए लद्दाख की सुध लेना और यथाशीघ्र वहां के बौद्ध लोगों की कठिनाईयों और आकांक्षाओं पर सहानुभूति ढंग से विचार करना और अधिक आवश्यक हो गया है।

समाधान

महाराजा हरिसिंह द्वारा 26 अक्तूबर, 1947 को अपने विशाल राज्य के भारत में विधिवत् विलय के बाद हुये जम्मू-काश्मीर और लद्दाख राज्य के अंदर और बाहर, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय घटनाचक्र, उनमें शेख अब्दुल्ला, पं. नेहरू और महाराजा हरिसिंह की भूमिका और उनकी सोच और नीति रीति के सम्बन्ध में मिली नई जानकारी के विवेचन, विश्लेषण और मूल्यांकन, 1989 से पाकिस्तान द्वारा काश्मीर में चलाये जा रहे प्राक्सी युद्ध तथा 1998 में भारत और पाकिस्तान के अणु विस्फोटों के बाद के घटनाचक्र और 1999 में कारगिल क्षेत्र में अघोषित युद्ध का खुले युद्ध का रूप लेने और उससे उत्पन्न स्थिति पर अंतर्राष्ट्रीय प्रतिक्रिया तथा पाकिस्तान के इस्लामी आतांकवाद के अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र बन जाने से जो स्थिति बनी है उनसे काश्मीर समस्या को भी एक नया रूप दे दिया है। इसलिए पुरानी धारणाओं और पूर्वाग्रहों से उपर उठकर भारत की सरकार और नीति निर्धारकों के लिये जम्मू-काश्मीर की समस्या पर नये सिरे से विचार करना अनिवार्य हो गया है। उसी में से इस समस्या का यथार्थवादी, तर्कसंगत और राष्ट्रहितानुकूल समाधान या हल

निकलेगा।

अब कुछ बातें पूरी तरह साफ हो चुकी हैं, पहली यह कि महाराजा द्वारा अपनी रियासत का भारत में किया गया विलय मुकम्मल, बिना शर्त और अपरिवर्तनीय था और है। उच्च न्यायालय के भूतपूर्व और दिवंगत मुख्य न्यायाधीश श्री मेहर चन्द महाजन, जो 1947 में विलय के समय जम्मू-काश्मीर के प्रधानमंत्री थे, और वर्तमान मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ती ए. एस. आन्नद ने अपने द्वारा अध्ययन के बाद लिखी पुस्तकों में अधिकार वाणी से स्पष्ट कर दिया है कि लार्ड माउन्ट बैटन द्वारा विलय के बाद 27 अक्टूबर के बाद महाराजा हरि सिंह को लिखा पत्र जिसमें पाकिस्तानी आक्रांताओं को खदेड़ने के बाद काश्मीर के लोगों का विलय के संबंध में मत लेने की बात कही गयी थी और पंडित नेहरू द्वारा इसी आशय की बात अपने आकाशवाणी पर दिये गये भाषण में कहना गलत, असंवैधानिक और अनाधिकार चेष्टा थी। उनकी इस घोषणा के आधार पर भारत सरकार द्वारा बनायी गयी गलत नीतियो के साथ बंधे रहने का अब कोई कारण और औचित्य नहीं है।

दूसरी बात जो अब पूरी तरह स्पष्ट हो गई है वह यह है कि सारे जम्मू काश्मीर राज्य को काश्मीर घाटी के साथ गलत-मलत करना और शेख अब्दुल्ला, जो केवल काश्मीर घाटी का नेता था, को सारी रियासत के नेता और प्रतिनिधी के रूप में पेश करना और महाराज हरिसिंह पर दबाव डालकर सारी रियासत का प्रशासन उसे सौंपना एक भयानक और बुनियादी गलती थी।

महाराजा की सरकारी उपाधी के अनुसार वह 'जम्मू, काश्मीर और तिब्बत इत्यादी, का महाराजाधिराज था। केवल काश्मीर घाटी का नहीं। काश्मीर घाटी तो रियासत के संस्थापक गुलाब सिंह के अधिकार में अन्य सब क्षेत्रों पर उसके द्वारा अधिकार कर लेने के बाद 1846 में आई थी। तब उसने उसे अपने राज्य का एक अलग प्रांत बनाया था। रियासत की राजधानी शुरू से ही जम्मू थी। श्रीनगर को उसने केवल ग्रीष्म कालीन राजधानी बनाया था। इस विशाल राज्य के इन विभिन्न क्षेत्रों को जोड़ने वाली एकमात्र कड़ी डोगरा सिंहासन था। रियासत के लोकतांत्रिक भारत में विलय के बाद शेख अब्दुल्ला को काश्मीर घाटी की प्रमुख राजनैतिक पार्टी के नेता के रूप में काश्मीर घाटी का शासन सौंपने का औचित्य था। परंतु जम्मू-लद्दाख और अन्य क्षेत्रों का शासन भी उसके हाथ में देना सरासर गलत और अनुचित था। उसका उन क्षेत्रों में ना कोई दखल था और ना प्रभाव। उसके द्वारा 1946 में चलाये गये काश्मीर छोड़ो आन्दोलन का उद्देश्य काश्मीर घाटी

को शेष राज्य से अलग करके अपने अधिकार में लाना था। यह आन्दोलन विशेष रूप में डोगरा महाराज और जम्मू के लोगों के विरूद्ध था। इसलिए जम्मू का शासन भी उसके हाथ में देना विशेष रूप में आपत्तिजनक था।

अब्दुल्ला के हाथ में जम्मू का प्रशासन भी देने के तुरंत बाद मैंने रियासत के तत्कालीन दीवान मेहरचन्द महाजन का ध्यान इस गलती की ओर खींचा और उनसे पूछा कि जम्मू का प्रशासन अब्दुल्ला को क्यों सौंपा गया है। उनका उत्तर था! किसे सौंपते? क्या जम्मू में ऐसी राजनैतिक पार्टी और नेता था, जिसे जम्मू की सत्ता सौंपी जाती? उनकी इस बात में वजन था। तभी मैंने जम्मू में प्रजा परिषद बनाने का फैंसला किया और 15 नवम्बर 1947 को इसके निर्माण की घोषणा कर दी। यदि गृहमंत्री और राज्यों के मंत्री के नाते जम्मू-काश्मीर राज्य सरदार पटेल के कार्य क्षेत्र में रहने दिया होता तो संभवत: यह गलती न होती। पंडित नेहरू ने उसे सरदार पटेल के बजाय अपने अधिकार क्षेत्र में रखकर भारी भूल की थी। विलय के बाद सारी रियासत की सुरक्षा की जिम्मेदारी भारत सरकार के कंधों पर आ गयी। भारत सरकार इस जिम्मेदारी को निभाने में विफल हुई। उसका भी मुख्य कारण श्री नेहरू ही थे। उन्होंने जम्मू-काश्मीर राज्य में भेजी गयी भारतीय सेना की राजनैतिक कमान भी शेख अब्दुल्ला के हाथ में दे दी और भारतीय सेना कहां भेजी जाए उसका फैंसला उसके हाथ में छोड़ दिया। अब्दुल्ला रियासत के काश्मीर घाटी के अतिरिक्त अन्य मुस्लिम बहुल क्षेत्रों को पाकिस्तान को देना चाहता था। वह वास्तव में दो राष्ट्र के सिद्धांत के विरूद्ध नहीं था बल्कि अपने स्वार्थ के लिए वह काश्मीर घाटी को पाकिस्तान से अलग तीसरा इस्लामी राष्ट्र बनाना चाहता था। इसलिए नेहरूवादियों का यह कहना कि मुस्लिम बहुल काश्मीर को अब्दुल्ला को तुष्ट करके भारत में रखना उनके तथा कथित सैक्युलरवाद के लिए आवश्यक था, आत्मवंचना और देश को धोखा देना है। शेख अब्दुल्ला घोर साम्प्रदायिक और इस्लामी सिद्धांतवादी था। वह पहले मुसलमान और फिर काश्मीरी था। सुविधावादी और कुर्सी का भूखा होने के कारण वह कभी-कभी अपनी सुविधा के लिए अपने आप को भारतीय भी कह देता था. परंतु उसने दिल से रियासत का भारत में विलय स्वीकार नहीं किया था। 27 अक्टूबर रात को प्रताप चौक में दिये गए अपने भाषण में उसने यह बात स्पष्ट शब्दों कर दी थी। उसके बाद भी उसपर विश्वास करते रहना और सारी रियासत का प्रशासन उसे सौंप देना नेहरू की और अब्दुल्ला की रणनीती की जीत थी। उसने ब्रिगेडियर राजेंद्र सिंह, कर्नल रंजीत राय, परमवीर

चक्र मेजर सोमनाथ शर्मा और अनेक भारतीय सैनिकों के बलिदान पर पानी फेर दिया और जम्मू-काश्मीर में जीती हुई बाजी को वस्तुत: हार में बदल दिया। 53 वर्षों के बाद स्थिति और बदतर हो चुकी है। जम्मू-काश्मीर रियासत का बहुत कुछ मजहबी आधार पर विभाजन हो चुका है और इसका तीस हजार वर्गमील से अधिक क्षेत्र जिसमें गिलगित, बलतिस्तान और पंजाबी भाषा-भाषी मुसलिम क्षेत्र जिसे पाकिस्तान ने 'आजाद काश्मीर' का नाम दे रखा है, पाकिस्तान के अधिकार में है। पाकिस्तानियों ने वहां के एक लाख के लगभग हिंदू-सिक्खों को खत्म करके उस सारे क्षेत्र का इस्लामीकरण और पाकिस्तानीकरण कर लिया है। इस प्रकार दो राष्ट्र के आधार पर जम्मू-काश्मीर राज्य का विभाजन हो चुका है। भारत के पास अब केवल काश्मीर घाटी, जम्मू और लद्दाख क्षेत्र तथा काश्मीर को पाक अधिकृत क्षेत्र से काटने वाली पंजाबी भाषा-भाषी उड़ी-टीटवाल पट्टी तथा लद्दाख को पाक अधिकृत बलतिस्तान से काटने वाली बलती भाषा-भाषी कारगिल द्रास पट्टी रह गयी है। इनमें काश्मीर घाटी मुस्लिम बहुल है। पाकिस्तान और काश्मीर में उसके कुछ समर्थक और एजेंट उसे दो राष्ट्र के सिद्धांत के आधार पर पाकिस्तान में शामिल करने के लिए प्रयत्न शील हैं और शेख अब्दुल्ला और उसके बेटे फारूख अब्दुल्ला के साथी शेख अब्दुल्ला के अनुसार इसे तीसरा इस्लामी राष्ट्र राज्य बनाकर दो राष्ट्र के सिद्धांत को तीन राष्ट्र के सिद्धांत में बदलने के लिए प्रयत्नशील हैं।

कारगिल युद्ध के बाद अमरीका के राष्ट्रपति क्लिंटन और अमरीका के मित्र देशों के नेताओं ने पहली बार खुलकर इस विभाजन रेखा जिसे एल.ओ.सी कहा जाता है को अंतर्राष्ट्रीय मान्यता दी है और इसका आदर करने और इसका अतिक्रमण न करने की बात दृढ़ता से कही है। परिणामत: प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उन्होंने काश्मीर घाटी समेत रियासत के शेष भाग को भारत का अभिन्न अंग मान लिया है। इसका भारत के अंतर्गत संवैधानिक स्वरूप क्या हो सर्वथा भारत का आंतरिक मामला है और इसमें पाकिस्तान अथवा किसी अन्य देश का कोई दखल नहीं है। इस स्थिति में भारत सरकार द्वारा पाक अधिकृत क्षेत्र को वापिस लेने की रट लगाना बेमानी हो गया है। यह ठीक है कि कानूनी दृष्टि से वह सारा क्षेत्र भारत का है परंतु व्यवहार में भारत 1949 से ही उसे पाकिस्तान को दिये देश के अन्य भागों की तरह लगभग भूल चुका है। देश की जनता को भारत सरकार से यह पूछने का अधिकार है कि इसने इस क्षेत्र पर कानूनी दावे को वास्तविक अधिकार

में बदलने के लिए गत् 52 वर्षों में क्या किया है? 1971 के युद्ध के बाद जब इस क्षेत्र को वापिस लिया जा सकता था तब भी भारत सरकार ने इस पर दावा नहीं किया और युद्धबंदी रेखा को स्थायी सीमा मनवाने का ही प्रयत्न करता रहा। इसलिए यह मानकर चलना चाहिए कि पाक अधिकृत क्षेत्र अब वस्तुत: पाकिस्तान का अंग बन चुका है। पाकिस्तान इस विषय में अब बात करने को भी तैयार नहीं है। युद्ध के द्वारा भी इसे वापिस लेना अब कठिन हो गया है। गत् 52 वर्षों में पाकिस्तान ने सामरिक दृष्टि से इस सारे क्षेत्र में अपनी स्थिति बहुत मजबूत कर ली है। इसने सिंधू नदी के साथ-साथ नयी सड़क बनाकर गिलगित और बलतिस्तान की राजधानी असकरदू को सारा वर्ष खुली रहने वाली सड़क से इस्लामाबाद के साथ जोड़ दिया है। यही सड़क आगे कराकोरम दर्रा पार करके पाकिस्तान को चीन के साथ मिलाती है। इसने इस सारे क्षेत्र में सामरिक महत्व की सड़कों का जाल बिछा दिया है और कई सैनिक छावनियां और हवाई अड्डे भी बना लिये हैं। इस क्षेत्र में बड़ी संख्या में पंजाबी मुसलमान भी बस चुके हैं। वहां हिंदू एक भी नहीं। इसलिए इस क्षेत्र में जाकर पाकिस्तान से लड़ना सामरिक दृष्टि से भारत के लिए महंगा सौदा होगा। सामरिक मामलों के विशेषज्ञ इस बात को भली-भांति समझ सकते हैं।

इसलिए यह मानकर चलना चाहिए कि जम्मू-काश्मीर राज्य के इस पाक अधिकृत क्षेत्र का भविष्य अब पाकिस्तान के भविष्य के साथ जुड़ चुका है। यह भी अब स्पष्ट हो चुका है पाकिस्तान जब तक कायम रहेगा भारत का शत्रु रहेगा। और इसके साथ दोस्ती की रट लगाते रहने को मृग-मरिचिका ही कहा जा सकता है। पाकिस्तान के साथ एक निर्णायक युद्ध, जो आणविक विश्व युद्ध का रूप ले सकता है अब अनिवार्य हो गया है। भारत को वह युद्ध सिन्ध और पंजाब में जहां इसकी सामरिक स्थिति पाकिस्तान से बेहतर है लड़ना होगा रियासत के पाक अधिकृत क्षेत्र में नहीं। इसलिए समय की आवश्यकता और हालात का तकाजा है कि भारत सरकार अपना सारा ध्यान अपनी पकड़ उस भाग पर जो इसके अधिकार में है मजबूत करने पर लगाये।

जहां तक जम्मू और लद्दाख का संबंध है इसके विषय में कभी कोई विवाद नहीं था। भारत सरकार का जम्मू-काश्मीर संबंधी गलत नीति का यह परिणाम है कि इनका भविष्य भी संदेह के घेरे में आने लगे हैं। इसलिए सबसे पहले इनपर ध्यान देने की आवश्यकता है।

भारत के साथ लगे हुए इन हिंदू-बहुल और बौद्ध-बहुल क्षेत्रों और वहां की जनता की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि भारत की आम जनता उनके संबंध में बुनियादी जानकारी से भी अनभिज्ञ है। भारत सरकार उनके विषय में अभी तक उदासीन रही है। उनके लोगों की देशभक्ति और राष्ट्रीय भावना का गत् 53 वर्षों से नाजायज लाभ उठाया गया है और उन्हें घर की मुर्गी समझकर इस्लामी हलाल की तरह शनैः-शनैः ज़वह किया जा रहा है। उन्हें काश्मीर घाटी के साथ बांधकर और उन्हें उनकी इच्छाओं और आकांक्षाओं के विरूद्ध संविधान की अस्थायी धारा 370 की लपेट में लाकर योजनाबद्ध ढंग से उनका इस्लामीकरण किया जा रहा है और काश्मीर घाटी के लोगों को तुष्ट करने के लिए बली का बकरा बनाया जा रहा है।

लद्दाखः- इनमें लद्दाख का मामला अधिक गंभीर है और इसपर अविलंब ध्यान देने की आवश्यकता है। यह क्षेत्र क्षेत्रफल में सबसे बड़ा और जनसंख्या की दृष्टि से सबसे छोटा है। काश्मीर सरकार जिसपर गत् 53 वर्षों से काश्मीरी मुसलमान हावी हैं इसका लाभ उठाकर वहां योजनाबद्ध ढंग से काश्मीरी मुसलमानों को बसा रही है और बौद्ध लद्दाखियों, जिनकी जनसंख्या 1947 में वहां की कुल जनसंख्या की 90 प्रतिशत थी को अपने ही घर में अल्पमत बनाने और लद्दाख को शेख अब्दुल्ला की कल्पना के इस्लामी काश्मीर का अंग बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। शेख अब्दुल्ला द्वारा लद्दाख को जम्मू के साथ जोड़ने वाले ज़नसकार भाग को इससे काटकर और मुसलिम बहुल कारगिल और द्रास के साथ मिलाकर एक नया मुसलिम बहुल जिला बनाना इसी योजना का अंग था।

लद्दाख के मूल निवासी बौद्ध और उनके प्रतिनिधी संगठन लद्दाख बौद्ध एसोसिएशन ने भारत का विभाजन होते ही यह स्पष्ट कर दिया था कि लद्दाख किसी भी हालत में पाकिस्तान का अंग बनने को तैयार नहीं है। रियासत के भारत में विलय के बाद यह संगठन लद्दाख को भारत का केंद्र शासित क्षेत्र बनाने के लिए सतत् प्रयत्न करता रहा है। कारगिल युद्ध और उसके बाद जुलाई 2000 में जनसकार के एक बौद्ध मठ पर काश्मीरी आतंकियों द्वारा हमला करके कुछ लामाओं की हत्या के बाद लद्दाखी अधिक चिंतित और सतर्क हो गये हैं और उन्होंने लद्दाख को काश्मीर से अलग कर इसे भारत का केंद्र शासित प्रदेश बनाने का आंदोलन तेज कर दिया है। देश का जनमत अब उनकी स्थिति, उनकी पीढ़ा और उनकी मांग के औचित्य को समझकर उसके पक्ष में होता जा रहा है।

लद्दाख के अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व भी अब सरकार के समझ में आने लगा है। तिब्बत पर अधिकार कर लेने के बाद से चीन की गिद्ध दृष्टि लद्दाख पर पड़ रही है। अब कुछ लद्दाखी भी भारत सरकार के रवैये से निराश हो चीन की ओर देखने लगे हैं। इसलिए लद्दाख के लोगों की तर्कसंगत और न्यायसंगत मांग को और अधिक मांग की और अधिक उपेक्षा करना सारे देश को मंहगा पड़ सकता है।

लद्दाख को केंद्र शासित प्रदेश बनाने के लिए इसे काश्मीर घाटी से प्रशासनिक दृष्टि से अलग करना और जनसकार को शेष लद्दाख के साथ जोड़ना पहला पग है। दूसरा पग इसके प्रशासन में से पाकप्रस्त तत्व तथा राष्ट्र विरोधी तत्वों को हटाना और उनके बदले वहां असंदिग्ध आस्था वाले प्रशासक भेजना होगा। बहुत से काश्मीरी मुसलमान जिन्हें योजनाबद्ध ढंग से लद्दाख में मुसलिम आबादी बढ़ाने के लिए वहां बसाया गया है या तो अपने आप निकलने लगेंगे और या लद्दाख के लोगों के साथ एकरूप हो जायेंगे।

केंद्र शासित प्रदेश के रूप में लद्दाख के आर्थिक विकास की गति तेज होगी और इसमें अधिक संख्या में देशी और विदेशी पर्यटक आने लगेंगे। साथ ही सिंधु नदी जो अपने स्रोत मानसरोवर से निकलने के बाद लद्दाख में दाखिल होती है और पाक अधिकृत क्षेत्र और पाकिस्तान में प्रवेश करने से पहले कई सौ मीलों तक उसमें बहती है की यात्रा एक राष्ट्रीय यात्रा बन जाएगी।

लेह से चंडीगढ़ केवल आधे घंटे की उड़ान है परंतु सड़क के रास्ते यह दिल्ली से बहुत दूर पड़ता है। श्रीनगर होकर जाने वाली सड़क को बनिहाल और योजला दर्रों में से होकर गुजरना पड़ता है और यह वर्ष में छः महीनों से अधिक समय बंद रहती है। कुल्लू-मनाली और लाहौल से होकर जाने वाली सड़क को रोहतांग और इससे भी ऊंचे दर्रों में से गुजरना पड़ता है। यह सड़क वर्ष में केवल चार महीनों तक ही खुली रहती है। जम्मू, किश्तवाड़ और पाडर होकर जाने वाले सबसे छोटे रास्ते का अभी तक विकास नहीं किया गया है। उस सड़क के बन जाने से लद्दाख के साथ-साथ जम्मू के भद्रवाह, किश्तवाड़ और पाडर इलाके भी पर्यटकों के लिए खुल जाएंगे।

इस प्रकार लद्दाख को काश्मीर घाटी से अलग करके केंद्र शासित प्रदेश बनाने के अनेक लाभ होंगे। इसलिए इसमें और विलंब करना या इसके रास्ते में रोड़े अटकाना देश के साथ द्रोह करना होगा।

द्रास कारगिल पट्टी :- लद्दाख और पाक अधिकृत बलतिस्तान के बीच

पड़ने वाली द्रास कारगिल पट्टी के लोग बलती भाषा-भाषी शिया मुसलमान हैं। उनको लद्दाख के साथ जोड़ने का कोई लाभ और औचित्य नहीं है। इसे अतिशीघ्र सेना के अधिकार में देकर सुरक्षा पट्टी का रूप देना चाहिए और द्रास तथा कारगिल का स्थानीय प्रशासन वहां के लोगों के द्वारा चुनी गयी नगर पालिकाओं को सौंप देना चाहिए। ऐसा करना देश की सुरक्षा के लिए भी हितकर होगा और वहां के लोगों के लिए भी। जम्मू किश्तवाड़-पाडर लेह सड़क बन जाने से श्रीनगर द्रास और कारगिल होकर लेह जाने वाली सड़क पर निर्भरता कम हो जाएगी। इसलिए उस सड़क के निर्माण को देश की सुरक्षा की दृष्टि से भी प्राथमिकता देनी चाहिए।

जम्मू :- जम्मू क्षेत्र जो दक्षिण में पठानकोट और सुचेतगढ़ से उत्तर में पीर पंचाल पर्वत तक और पूरब में रावी नदी और लद्दाख से लेकर पश्चिम में नियंत्रण रेखा तक फैला हुआ है क्षेत्रफल और जनसंख्या की दृष्टि से हिमाचल प्रदेश से बड़ा है और आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी है। चंद्र भागा या चिनाव नदी और तवी इत्यादी इसकी सहायक नदियां जो इसके बीचोंबीच बहती हैं, पन बिजली का बहुत बड़ा स्रोत बन सकती हैं। पर्यटन की दृष्टि से इसमें सन्नासर, भद्रवाह किश्तवाड़, बनिहाल, पतनी टाप, बटोत, कुद जैसे अनेक रमणीक स्थान हैं जो जलवायु और प्राकृतिक सुंदरता के मामले में काश्मीर घाटी के पर्यटन स्थलों से किसी तरह कम नहीं हैं। यह क्षेत्र महाराजा गुलाबसिंह द्वारा बनाये गए विशाल राज्य का मूल क्षेत्र है और यह काश्मीर घाटी को शेष भारत से जोड़ने वाली कड़ी है इसलिए इसकी सुरक्षा शांति और विकास का काश्मीर घाटी की सुरक्षा शांति और समृद्धि के लिए भी विशेष महत्त्व होगा।

क्योंकि काश्मीर घाटी को जम्मू काश्मीर की विधान सभा में अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व मिला हुआ है इसलिए सारी रियासत पर काश्मीरी मुसलमानों का 1947 से ही वर्चस्व कायम हो चुका है। इसका लाभ उठाकर शेख अब्दुल्ला और उसका बेटा फारूख अब्दुल्ला राष्ट्रविरोधी तत्त्वों और पाकिस्तानी इस्लामी आतंकवादियों की सहायता से इस क्षेत्र का भी इस्लामीकरण करता जा रहा है। इस हेतु योजना बद्ध ढंग से जम्मू क्षेत्र में मुसलमानों की आबादी बढ़ायी जा रही है। काश्मीरी मुसलमानों के वर्चस्व वाले जम्मू-काश्मीर का प्रशासन और पुलिस इन तत्त्वों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सहायता देती आ रही है। इस प्रशासन के कारण ही जम्मू क्षेत्र में भी आतंकवादी गतिविधियां बढ़ रही हैं और जम्मू का भविष्य भी

खतरे में पड़ता जा रहा है।

इसलिए न केवल इस क्षेत्र के लोगों के अपितु सारे देश के लोगों के हित का तकाजा है कि जम्मू क्षेत्र को यथा शीघ्र काश्मीर घाटी से अलग करके इसे भारत संघ का एक अलग राज्य बनाया जाए। इससे न केवल इस क्षेत्र के लोगों की आकांक्षाएं पूरी होंगी अपितु इसका काश्मीर घाटी के लोगों पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। इस क्षेत्र के लोग 1950 से संविधान की स्थायी धारा और उसके आधार पर सारी रियासत को शेष भारत से भिन्न विशेष दर्जा देने का विरोध करते आ रहे हैं परंतु उनके देश भक्ति और राष्ट्र प्रेम को सांप्रदायिकता कहकर अभी तक दबाया जाता रहा है परंतु जम्मू के लोग अपने हितों के साथ खिलवाड़ को और अधिक बर्दाश्त करने को तैयार नहीं हैं।

लद्दाख की तरह जम्मू का भी काश्मीर घाटी से कोई संबंध नहीं था। इसे काश्मीर घाटी से अलग करने वाली हिमालय की पीर पंचाल श्रृंखला दस हजार से पंद्रह हजार फुट तक ऊंची है। बनिहाल, सियाचिन और नंदी मार्ग के दर्रे भी दस हजार फुट से अधिक ऊंचे हैं। इस प्रकार प्रकृति और भूगोल ने उसे काश्मीर से अलग कर रखा है। इसे काश्मीर से अलग करने की मांग को सांप्रदायिक कहना सैक्युलरवाद का उपहास करना और प्रकृति तथा भूगोल को नकारना है।

जम्मू के अलग राज्य बनने से न केवल जम्मू के विकास को गति मिलेगी अपितु इसके प्रशासन को चुस्त द्रुस्त करने और इसे राष्ट्र विरोधी तत्वों से साफ करने का मार्ग भी प्रशस्त हो जाएगा। ऐसा किये बिना न जम्मू में आतंकवाद पर काबू पाया जा सकता है और न वहां शांति कायम की जा सकती है। इसलिए राष्ट्रहित का तकाजा है कि जम्मू को हिमाचल प्रदेश और उत्तरांचल प्रदेश की तरह भारत संघ का अलग राज्य बनाने में और देर न की जाए।

काश्मीर घाटी :- अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण काश्मीर घाटी अनादि काल से भारत का अलग राज्य रही है। जब कभी अशोक जैसे सम्राटों ने इसे अपने साम्राज्यों में मिलाया तब उन्होंने भी इसे अपने साम्राज्य का अलग जनपद या सूबा बनाया। इसकी यही स्थिति मुगल साम्राज्य और रणजीत सिंह के साम्राज्य में रही। महाराजा रणजीत सिंह ने 1820 में इस पर अधिकार कर इसे अलग सूबा बनाया था। महाराजा गुलाब सिंह ने भी 1846 में इस पर अधिकार करने के बाद इसे एक अलग प्रान्त बनाया था और इसके लिए अलग गवर्नर नियुक्त करने की व्यवस्था की थी। इसलिए इसे जम्मू, लद्दाख के अन्य क्षेत्रों के साथ गलत मलत

करना या उन्हें भी काश्मीरी कहने का कोई आधार और औचित्य नहीं है।

काश्मीर घाटी पर 14वीं शताब्दि के आरम्भ में इस्लामवादियों का अधिकार हुआ और इसी शताब्दि के अन्तिम चरण में इसका बलात् इस्लामीकरण किया गया। परंतु आज भी इस घाटी का हर ग्राम, नगर और चश्मा इसके हिन्दू मूल की याद दिलाता है।

ब्रिटिश सरकार ने देशभक्त और राष्ट्रवादी राजा हरिसिंह को दबाने और उसे सामरिक महत्व के गिलगित क्षेत्र को ब्रिटिश सरकार को पट्टे पर देने के लिए विवश करने के लिए अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से प्रशिक्षित शेख अब्दुल्ला को अपने एजेन्ट के रूप में आगे बढ़ाकर घाटी के मुसलमानों में इस्लामी साम्प्रदायिकता और अलगाववाद को जगाया था। अंग्रेजों के मानस पुत्र श्री नेहरू ने शेख अब्दुल्ला का साथ दिया। जैसा कि पहले बताया जा चुका है शेख अब्दुल्ला ने कभी भी महाराजा द्वारा जम्मू-काश्मीर के भारत में विलय को दिल से स्वीकार नहीं किया था। यदि पाकिस्तान के शासक काश्मीर घाटी पर उसका आधिपत्य स्वीकार करने का आश्वासन उसे देते तो वह काश्मीर घाटी के पाकिस्तान में शामिल करने के लिए जोर लगाता। परंतु जब पाकिस्तान ने उसे यह आश्वासन नहीं दिया तो उसने अपना यह उद्देश्य पंडित नेहरू के माध्यम से हासिल किया और दो राष्ट्र के स्थान पर तीन राष्ट्र के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना शुरू किया। उसके अनुसार पाकिस्तान एक इस्लामिक राष्ट्र था, भारत हिन्दू राष्ट्र था और काश्मीर घाटी एक तीसरा इस्लामी काश्मीरी राष्ट्र था। सैक्यूलरवाद को उसने कभी स्वीकार नहीं किया। इसलिए उसने न केवल पाक अधिकृत क्षेत्र से निकाले गये हिन्दुओं को काश्मीर घाटी में बसने नहीं दिया अपितु अपने हाथ में सत्ता आते ही काश्मीर घाटी के मूल हिन्दू निवासी हिन्दुओं को भी वहां से निकालना शुरू किया।

शुरू में शेख अब्दुल्ला की स्थिति याचक की थी। भारत सरकार और भारतीय सेना ने काश्मीर को पाक आक्रान्ताओं से मुक्त कराकर उसका शासन उसे सौंपा था। इस प्रकार उसका अस्तित्व ही भारतीय सेना और भारत सरकार की आर्थिक सहयोग पर निर्भर था। उसको याचक से काश्मीर का भाग्य विधाता नेहरू ने काश्मीर में जनमत की असंवैधानिक और गैरकानूनी पेशकश करके बनाया। तब शेख अब्दुल्ला ने काश्मीर के लिए विशेष दर्जा की मांग उठायी और संविधान में इस आशय की धारा जोड़ने का आग्रह किया। यदि नेहरू डा. अम्बेडकर की तरह राष्ट्रवादी और देशभक्त होते तो वे भी डा. अम्बेडकर की तरह अब्दुल्ला की मांग

मानने से इन्कार कर देते। ऐसा न करके उन्होंने अपनी देशभक्ति पर भी प्रश्नचिन्ह लगा दिया।

1952 में डा. मुखर्जी और पं. नेहरू के बीच रियासत को विशेष दर्जा देने पर हुए पत्राचार के अध्ययन से पता चलता है कि नेहरू के पास डा. मुखर्जी के इस आरोप का कि उन्होंने काश्मीर के लिए अलग संविधान, अलग ध्वज और अलग राष्ट्रपति की अब्दुल्ला की मांग मानकर काश्मीर को भारतीय गणराज्य के अंतर्गत एक अलग गणराज्य बनाकर भारत की प्रभुसत्ता को नकारा है, का कोई उत्तर नहीं था। उन्होंने अपने पत्र में यह लिख कर कि उन्होंने अब्दुल्ला को उसकी मांग मानने का वचन दिया था, जिससे वह पीछे नहीं हट सकते, अपना पिण्ड छुड़ाना चाहा। इसके उत्तर में डा. मुखर्जी ने नेहरू को 1952 में लिखे अपने दूसरे पत्र में उन्हें लताड़ा और कहा कि राष्ट्रहित के विरुद्ध कोई वचन देना गलत था। उन्होंने आगे लिखा कि यदि उनको अब्दुल्ला को दिये वचन को पूरा करने की इतनी चिन्ता थी तो वे विशेष दर्जा को काश्मीर घाटी तक सीमित रखते जम्मू और लद्दाख के लोग जो इन क्षेत्रों के भारत का अभिन्न अंग और स्वयं पूर्णरूपेण भारतीय नागरिक बनना चाहते हैं उनपर अलग संविधान और अलग नागरिकता कानून थोपने का कोई अधिकार न था और न इसका कोई औचित्य है। इसलिए उन्होंने सुझाव दिया कि कुछ समय के लिए शेख अब्दुल्ला की इच्छा के अनुसार काश्मीर घाटी को भले विशेष दर्जा और विशेष अधिकार दे दिए जाएं परंतु जम्मू तथा लद्दाख को पूरी तरह शेष भारत के साथ मिला लिया जाए और उनके लोगों की इच्छाओं और आकांक्षाओं का आदर घाटी को भारत संघ का राज्य बनाकर दिया जाए

कुछ महीने बाद भारतीय जनसंघ के कानपुर में हुए पहले राष्ट्रीय अधिवेशन में दिए गए अपने अध्यक्षीय भाषण में इस सुझाव को उन्होंने दोहराया। उनका 29 दिसंबर 1952 का यह भाषण इस मामले में बड़ा स्पष्ट है। दुर्भाग्य से कुछ मास बाद 23 जून 1953 को बंदी के रूप में श्रीनगर में उनकी मेडिकल हत्या कर दी गयी। इस षड़यंत्र जिसमें प्रमुख भूमिका पं. नेहरू और शेख अब्दुल्ला की थी के विषय में बहुत कुछ लिखा जा चुका है।

डा. मुखर्जी के बलिदान और शेख अब्दुल्ला को मुख्यमंत्री पद से हटाने और देशद्रोह के लिए जेल में डाले जाने के बाद ऐसी स्थिति पैदा हो गयी थी कि संविधान की अस्थायी धारा 370 को बिल्कुल खत्म किया जाता और या कम से कम इसके प्रभाव क्षेत्र को डा. मुखर्जी के सुझाव के अनुसार काश्मीर घाटी तक सीमित

करके लद्दाख और जम्मू को पूरी तरह भारत में मिलाने की प्रक्रिया शुरू कर दी जाती। परंतु डा. मुखर्जी के बलिदान के बाद कुछ समय के लिए जनसंघ नेतृत्वविहीन हो गया। इस बीच संघ के एक उच्च अधिकारी ने यह कहकर कि जम्मू को अलग कर देने से काश्मीर घाटी पाकिस्तान के अधिकार में चली जाएगी, जनसंघ के हाथ बांध दिए। फलस्वरूप जब लोहा गरम था तब इस दिशा में आवश्यक प्रयत्न नहीं हुआ और नई काश्मीर सरकार पर भी अलगवावादी तत्व छाने लगे। इस प्रकार डा. मुखर्जी द्वारा पेश किए गए तर्कसंगत हल को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। कुछ समय के बाद पं. नेहरू काश्मीर के सम्बन्ध में फिर अपनी पुरानी चाल व ढर्रे पर चलने लगे। मरने से पहले वे अब्दुल्ला के वचन को पूरी तरह कार्यरूप देना चाहते थे। अब्दुल्ला को 1964 के शुरू में जेल से मुक्त करना उस पर देशद्रोह का मुकदमा वापिस लेना और फिर उसे पाक शासकों से बात करने के लिए पाकिस्तान भेजना उनकी प्रस्तावित कार्ययोजना के अंग थे। परंतु विधि को कुछ और मंजूर था। अब्दुल्ला के पाकिस्तान जाने के कुछ दिन बाद श्री नेहरू के प्राण पखेरू उड़ गये। उनके उत्तराधिकारी श्री लालबहादुर शास्त्री सरदार पटेल की तरह राष्ट्रवादी, यथार्थवादी और प्रमाणिक नेता थे। उन्होंने अब्दुल्ला को जो पाकिस्तान से अन्य इस्लामी देशों में जाकर उनका अपने लिए समर्थन जुटाने और चीन के प्रधानमंत्री चाउ एन लाइ के साथ तालमेल बिठाने की दिशा में आगे बढ़ रहा था, को भारत लौटने का आदेश दिया और नई दिल्ली पहुंचने पर उसे पुन: नजरबन्द कर दिया।

जनवरी 1966 में श्री शास्त्री की ताशकन्द में रहस्यमय मृत्यु या हत्या के बाद नेहरू की बेटी इन्दिरा गांधी प्रधानमंत्री बन गयी और उसने अपने पिता के मार्ग पर सरपट भागना शुरू कर दिया। उसने 1975 में शेख अब्दुल्ला को पुन: जम्मू काश्मीर की सत्ता सौंपकर व उसे 1953 का अपना खेल अधिक सुरक्षा से खेलने का फिर अवसर दे दिया।

1975 के बाद काश्मीर की घड़ी की सुई उल्टी चलने लगी। 1982 में अब्दुल्ला की मृत्यु के बाद उसके बेटे को इन्दिरा गांधी ने रियासत का मुख्यमंत्री बना दिया। फारुख अब्दुल्ला इस बीच भारत की नागरिकता छोड़कर ब्रिटेन का नागरिक बन चुका था और अपनी ब्रिटिश पत्नी के साथ वहीं रहता था। वह जम्मू-काश्मीर लिबरेशन फ्रंट का संस्थापक सदस्य था और येन-केन प्रकारेण अपने पिता के स्वप्न को साकार करने के लिए प्रतिबद्ध था। जिस प्रकार उसने पहले

इन्दिरा गांधी और राजीव गांधी को बुद्धु बनाया और बाद में अटल बिहारी वाजपेयी और लाल कृष्ण आडवानी को उसने सिद्ध कर दिया कि वह अपने पिता से कहीं अधिक चालाक और दोगला है।

पाकिस्तान द्वारा 1989 में काश्मीर में प्रौक्सी युद्ध शुरू करने के लिए जमीन शेख अब्दुल्ला और फारुख ने तैयार कर रखी थी। इसलिए पाकिस्तान को अपनी 'ओपाक' योजना को कार्यरूप देना आसान हो गया।

1990 में काश्मीर घाटी के मूल निवासी हिन्दुओं को वहां से निकालने के बाद काश्मीर घाटी की समस्या के साथ एक नया आयाम जुड़ गया। कारगिल युद्ध के बाद अमरीका द्वारा नियंत्रण रेखा की वकालत और उसका आदर करने और घाटी में जनमत की बात को नई स्थिति में अप्रासंगिक बताकर काश्मीर समस्या को एक नया मोड़ दिया।

अब यह स्पष्ट है कि काश्मीर घाटी जम्मू और लद्दाख के मामले में पाकिस्तान का किसी प्रकार के दखल का प्रश्न नहीं रहा। इसके भविष्य का फैसला भारत और भारत की सरकार ने ही करना है।

इन बदलते हालात में देशभर में अब इस बात की सहमति बनती जा रही है कि यथाशीघ्र जम्मू और लद्दाख के मामले को काश्मीर घाटी से अलग करके समस्या का समाधान किया जाए।

फारुख अब्दुल्ला ने जम्मू-काश्मीर को 1952-1953 से पूर्व की स्थिति पर ले जाने की मांग उठाकर और जम्मू और लद्दाख को भी साम्प्रदायिक आधार पर बंटवारे की योजना पेश करके न केवल जम्मू और लद्दाख के लोगों को धोखा दिया अपितु सारे देश के राष्ट्रवादियों को सतर्क कर दिया है। अब काश्मीर घाटी को भौगोलिक आधार पर जम्मू और लद्दाख से अलग कर इसकी समस्या को अलग से निबटने का मार्ग प्रशस्त हो गया है। परंतु इस अनुकूल स्थिति का लाभ उठाने के लिए जो दूरदर्शिता और यथार्थवादिता चाहिए उसका केन्द्रीय सरकार के नेतृत्व में अभाव है। इस अनुकूल अवसर को घाटी में आतंकवादियों को सख्ती से दबाने की बजाए उनके सबसे बड़े संगठन हिजबुल मुजाहिद्दीन के साथ बिना शर्त बातचीत शुरू करके उसने शांति प्रक्रिया के नाम पर फिर राष्ट्रविरोधियों के तुष्टिकरण की प्रक्रिया शुरू कर दी है। अब जम्मू और लद्दाख के लोगों का संघर्ष और देश के राष्ट्रवादी तत्वों की जागरूकता ही स्थिति को बिगड़ने से बचा सकती है।

देश के सौभाग्य से अब राष्ट्रीय स्वयं संघ ने भी स्थिति की गंभीरता को

समझ लिया है और डा. मुखर्जी के सुझाव को कार्यरूप देने के पक्ष में अपना मन बना लिया है। इससे सारे देश के राष्ट्रवादियों को बल मिला है और काश्मीरी अलगाववादी भी यह समझने लगे हैं कि वे लद्दाख और जम्मू के संबंध में अपनी योजना को कार्यरूप देने में सफल नहीं हो सकते। इसलिए अब जम्मू काश्मीर राज्य का पुर्नगठन करके भौगोलिक आधार पर जम्मू और लद्दाख को काश्मीर घाटी से अलग करके नये राज्यों के रूप में शेष भारत के साथ पूरी तरह मिलाना लगभग तय लगता है। जहां तक काश्मीर घाटी का संबंध है उसके भावी स्वरूप तथा प्रशासनिक और संवैधानिक ढांचे के विषय में नये सिरे से विचार करने की आवश्यकता भी अब सब दूर महसूस की जाने लगी है। परंतु इसके संबंध में घाटी के विभिन्न तत्वों में अभी कोई एकमत नहीं बन पाया है।

काश्मीर घाटी के पाकग्रस्त तत्व पाकिस्तान को भी विचार विमर्श में एक पार्टी बनाने और काश्मीर घाटी को किसी रूप में पाकिस्तान के निकट लाने पर अड़े हुए हैं। दूसरी ओर कुछ अन्य काश्मीरी मुसलमान यह मानने लगे हैं कि पाकिस्तान के साथ मिलने से काश्मीर की स्थिति और बिगड़ेगी। उनमें कुछ अब खुल कर यह भी कहने लगे हैं कि यह इनका सौभाग्य था कि काश्मीर घाटी पर पाकिस्तान अपना अधिकार नहीं कर सका अन्यथा यह अब तक पाकिस्तान के भूमिपतियों और नवाबों की वैश्यालय की तरह की इभरतगाह बन गयी होती और किसी काश्मीरी स्त्री की इज्जत न बच पाती। इसलिए वे चाहते हैं कि काश्मीर घाटी आजाद हो परंतु इसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी भारत के पास रहे ताकि पाकिस्तानी दरिन्दे इस पर अपना अधिकार न कर सकें। ऐसे लोगों के साथ सार्थक बात हो सकती है। एक तीसरी पार्टी काश्मीरी गुर्जर हैं। उनकी घाटी में जनसंख्या लगभग 5 लाख है। वे हैं तो मुसलमान परंतु वे अपने आपको कृष्ण भक्त मानते हैं और भारत में ही रहना चाहते हैं। उनका अपना संगठन 'गुर्जर महासभा' है जो घाटी के अतिरिक्त जम्मू क्षेत्र में रहने वाले गुर्जरों का भी प्रतिनिधि संगठन है।

काश्मीरी पंडित :- चौथा और भारत की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण तत्व काश्मीरी मूल के हिन्दू जिन्हें काश्मीरी पंडित भी कहा जाता है, हैं। अपने ही देश में विस्थापित बनाये गए इन हिन्दुओं की जनसंख्या भी पांच लाख के लगभग है। सदियों के मुस्लिम राज्य और दासता के काल में इन्होंने ही कश्मीरियत, काश्मीरी भाषा और काश्मीर की विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को कायम रखा है। वे सभी अच्छे काश्मीरी हैं परंतु वे सब पहले भारतीय हैं। भारत की धरती में उनकी

निष्ठा है और काश्मीर के साथ उनका विशेष मोह है। जो स्थिति काश्मीर में बन चुकी है और जिस प्रकार काश्मीरी मुसलमानों में इस्लामी जुनून पैदा हो चुका है उसके रहते ये काश्मीरी हिन्दू घाटी में मुस्लिम आबादी से घिरे हुए अपने पुराने घरों में नहीं लौट सकते। वैसे भी उनके घर और वाड़ियां या लूट ली गई हैं और या उनपर बलात् अधिकार कर लिया गया है। इसलिए इन काश्मीरी हिन्दुओं को काश्मीर घाटी के एक विशिष्ट और सुरक्षित पुनर्वास क्षेत्र में ही बसाया जा सकता है।

ऐसे क्षेत्र के संबंध में सारे काश्मीरी पंडित अभी एक मत नहीं हैं। परंतु वे सब इस बात पर सहमत हैं कि वे सुरक्षित क्षेत्र काश्मीर घाटी के पूर्वी और दक्षिणी भाग में हो और इसमें श्री अमरनाथ की गुफा, शेषनाग, पहलगाम, मटन, मार्तंड, अनंतनाग, समेत बनिहाल दर्रे में नेहरू सुरंग तक का क्षेत्र शामिल हो। वे चाहते हैं कि इस क्षेत्र को भी लद्दाख की तरह केन्द्रशासित राज्य का दर्जा दिया जाए। घाटी के शेष भाग को अधिक स्वायत्तता दी जाने पर उन्हें कोई आपत्ति नहीं।

इसलिए दूरदर्शिता राजनैतिक सूझबूझ और राष्ट्रहित का तकाजा है कि काश्मीर घाटी के भावी संवैधानिक ढांचे का फैसला इन सभी तत्वों के साथ बातचीत से तय हो। फारुख अब्दुल्ला की नेशनल कांफ्रेंस और काश्मीर के अन्य राजनीतिक संगठन जो काश्मीर को भारत का अंग मानते हैं को भी बातचीत में शामिल करना होगा।

ऐसी किसी सर्वदलीय बैठक और विचार विशेष के लिए उपयुक्त वातावरण बनाने के लिए पहली आवश्यकता यह है कि भारत का प्रधानमंत्री स्वयं श्रीनगर जाकर अधिकार वाणी से घोषणा करे कि काश्मीर भारत का अभिन्न अंग है और रहेगा। भारत के अंतर्गत अधिक स्वायत्तता दी जा सकती है और उसके संबंध में वार्ता हो सकती है। परंतु जो तत्व काश्मीर को भारत का अंग नहीं मानते उनके साथ बातचीत का प्रश्न नहीं उठता। ऐसे लोग काश्मीर छोड़कर पाकिस्तान जा सकते हैं। परंतु वे अपने साथ काश्मीर की धरती का एक इंच टुकड़ा भी नहीं ले जा सकते। प्रधानमंत्री की ऐसी घोषणा का अनुकूल प्रभाव पड़ेगा और बातचीत के लिए उपयुक्त माहौल बन सकेगा।

इस बीच सुरक्षा दलों को आतंकवादियों और उन्हें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहयोग देने वालों के साथ सख्ती से निपटने की पूरी छूट देनी होगी। बेकसूर लोगों की इस्लामी जेहाद के नाम पर हत्या करने वाले और उन्हें प्रश्रय और सहयोग

देने वाले मानववाद और मानव अधिकारों के सबसे बड़े शत्रु हैं। मानव अधिकारों के नाम पर उनका पक्ष लेने वाले तथाकथित सैक्युलरवादी बुद्धिजीवी भी इस आरोप से नहीं बच सकते।

उड़ी-टीटवाल पट्टी :- इन तीन विशिष्ठ भौगोलिक और ऐतिहासिक पहचान वाले क्षेत्रों के अतिरिक्त दो छोटे अन्य क्षेत्र हैं जो कि भारत के अधिकार में हैं परंतु जिनका अलग भाषायी और भौगोलिक क्षेत्र हैं। वे हैं काश्मीर घाटी और पाक अधिकृत क्षेत्र के बीच पड़ने वाली पंजाबी भाषा-भाषी उड़ी-टीटवाल पट्टी तथा लद्दाख और पाक अधिकृत बलतिस्तान के बीच पड़ने वाली बलती भाषा-भाषी द्रास कारगिल तुटतुक पट्टी इनके लोगों का काश्मीर घाटी और लद्दाख के लोगों के साथ कोई मेल नहीं है। उन्हें प्रशासनिक दृष्टि से काश्मीर घाटी और लद्दाख के साथ जोड़ा गया था। परंतु गत् पचास वर्षों के अनुभव से यह सिद्ध हो गया है कि यह व्यवस्था न इनके लोगों के लिए हितकर है और न देश की सुरक्षा के लिए। क्योंकि पाकिस्तान से घुसने वाले आतंकियों को इनमें होकर आना पड़ता है इसलिए उनके पहले शिकार इनमें रहने वाले गैर काश्मीरी और गैर लद्दाखी लोग बनते हैं। भारत की सुरक्षा, पाकिस्तान से अवैध घुसपैठ को रोकने और आतंकवादियों के साथ ठीक ढंग से निपटने के लिए इन दोनों पट्टियों को सुरक्षा पट्टियां घोषित कर के और इन्हें प्रशासनिक दृष्टि से काश्मीर घाटी और लद्दाख से अलग करके सीधे सेना के अधिकार में दे देना चाहिए। वहां के लोगों के अधिकार की रक्षा और स्थानीय स्वशासन के लिए समूचित व्यवस्था की जा सकती है।

दिल्ली के एक बड़े समाचार पत्र में मेरे द्वारा लिखा एक लेख में मैंने पहले पहले यह सुझाव कुछ वर्ष पूर्व दिया था। उसे पढ़कर कुछ प्रबुद्ध लोगों ने मुझे पत्र लिखकर मेरे सुझाव का स्वागत किया था।

जम्मू-काश्मीर में इस समय भी पाकिस्तान द्वारा भारत के विरूद्ध प्रोक्सी अथवा परोक्ष युद्ध चलाया जा रहा है जिसमें प्रतिदिन हमारे अनेक नागरिक और सुरक्षाकर्मी शहीद हो रहे हैं। परन्तु जिन काश्मीरी मुसलमानों की वर्तमान व्यवस्था बनाये रखने में निहित स्वार्थ पैदा हो चुका है वे इन गैर काश्मीरी क्षेत्रों को काश्मीरी साम्राज्य का अंग मानने लगे हैं और इनका शोषण करना अपना अधिकार मान बैठे हैं। इसलिए काश्मीर में वर्तमान काश्मीरी मुसलमानों के वर्चस्व वाली सरकार और फारूख अब्दुल्ला के इसके मुख्य मंत्री रहते हुए यह बदल नहीं किए जा सकते। इसलिए राष्ट्रहित और राष्ट्र की सुरक्षा का तकाजा है कि कुछ समय के लिए इस

रियासत में आपातकाल की घोषणा करके वहां की वर्तमान सरकार और विधान सभा को भंग कर दिया जाए। उसके बाद राष्ट्रपति संविधान की धारा 370 की उपधारा तीन के अंतर्गत राष्ट्रपति के आदेश से ऊपर सुझाए गए पुर्नगठन का आदेश दे और उसे तुरन्त कार्यरूप दिया जाए। उसके बाद काश्मीर जम्मू और लद्दाख की विधानसभाओं के चुनाव कराए जाएं और साथ ही उनके प्रशासनों में से संदिग्ध और राष्ट्रविरोधी तत्त्वों को निकाल उन्हें चुस्त-दुरूस्त किया जाए। यह काम छ: महीनों में पूरा किया जा सकता है।

ऊपर दिये गए सुझाव और समस्या का समाधान तर्क संगत यथार्थवादी और न्यायसंगत है। इसे कार्यरूप देने से इन सभी क्षेत्रों के लोगों की लोकतांत्रिक आकाक्षाएं पूरी होंगी, देश की सुरक्षा मजबूत होगी और भारत संघ के अलग राज्यों के रूप में इन तीनों के बहुमुखी विकास की गति तेज होगी।

यह सुझाव सर्वथा सैक्युलर और राष्ट्रहित के अनुकूल है। उन्हें कार्यरूप देने से सभी सांप्रदायिक और राष्ट्रविरोधी तत्त्वों पर प्रभावी अंकुश लग सकेगा और फारूख अब्दुल्ला को सांप्रदायिक आधार पर जम्मू और लद्दाख को बांटकर बृहद इस्लामी काश्मीरी साम्राज्य बनाने की कुत्सित योजना को प्रभावी ढंग से नकारा और निरस्त किया जा सकेगा।

परिशिष्ट-1

1846 की अमृतसर संधि

काश्मीर के सम्बन्ध में नेहरू-अब्दुल्ला के साथियों ने योजनाबद्ध ढंग से यह भ्रांति फैलाई हुई है कि काश्मीर घाटी अंग्रेजों ने 1846 में अमृतसर संधि के द्वारा 75 लाख में महाराजा गुलाबसिंह को बेची थी। यह सत्य नहीं है। वस्तुस्थिति भिन्न है।

1845 में अंग्रेजों और लाहौर दरबार के बीच हुए युद्ध में पंजाब की सैनिक हार के बाद अंग्रेजों ने लाहौर दरबार से युद्ध के खर्चे के रूप में 75 लाख नानकशाही रुपये मांगे। लाहौर दरबार यह रकम देने की स्थिति में नहीं था। इसलिए उसने इसके बदले में रावी और सिन्ध के बीच का सारा पहाड़ी क्षेत्र जो लाहौर दरबार के अधिकार में था, अंग्रेजों को सौंप दिया। काश्मीर घाटी को छोड़ यह सारा क्षेत्र उस समय गुलाब सिंह के अधिकार में था। अंग्रेज जानते थे कि इस इलाके पर अधिकार करने के लिए उन्हें गुलाबसिंह के साथ एक और लड़ाई लड़नी पड़ेगी। इसलिए उन्होंने गुलाबसिंह को पेशकश की कि वे, उसे इस सारे क्षेत्र का इस शर्त पर स्वतन्त्र राजा मानने को तैयार हैं यदि वह 75 लाख रुपया उनको दे। गुलाबसिंह ने यह शर्त मान ली। फलस्वरूप उसके और अंग्रेजों के बीच 9 मार्च 1846 को अमृतसर में हुई संधि के अनुसार अंग्रेजों ने इस सारे पहाड़ी क्षेत्र का गुलाबसिंह को विधिवत् कानूनी राजा मान लिया और गुलाबसिंह ने 75 लाख रुपये की व्यवस्था कर दी।

इस क्षेत्र में काश्मीर घाटी भी पड़ती थी परन्तु वह तब तक सीधे लाहौर दरबार के मातहत थी, लाहौर राज्य का एक अलग सूबा थी। इस संधि के अनुसार इस पर भी गुलाबसिंह का अधिकार हो गया।

बाद में गुलाबसिंह ने लाहौर दरबार के साथ 1847 में एक और संधि करके झेलम और सिन्ध नदी के बीच का पहाड़ी इलाका जो उसकी राजधानी जम्मू से बहुत दूर पड़ता था, लाहौर दरबार को वापिस कर दिया और इसके बदले में लाहौर दरबार ने जम्मू के दक्षिण का पंजाब राज्य का कुछ मैदानी इलाका उसे सौंप दिया। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि गुलाबसिंह ने काश्मीर घाटी को 75 लाख में अंग्रेजों से खरीदने की बात गलत है।

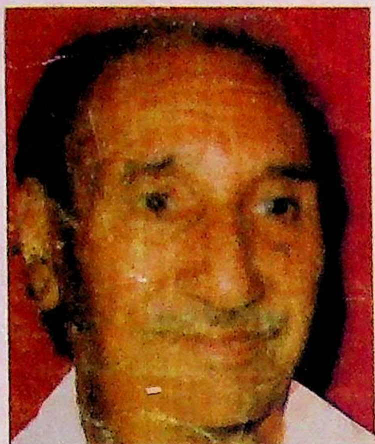
परिशिष्ट-2

1842 की लेह संधि

अमृतसर संधि से कई वर्ष पूर्व गुलाबसिंह के सेनापति वजीर जोरावर सिंह ने जम्मू क्षेत्र के किश्तवाड़ और पाडर से होकर लद्दाख में प्रवेश किया था और उसके राजा को युद्ध में हराकर लद्दाख को गुलाबसिंह के राज्य में शामिल कर लिया था। लद्दाख राज्य की राजधानी लेह थी और यह तिब्बत के शासक दलाईलामा के मातहत था।

लद्दाख और बल्तिस्तान को हस्तगत करके जनरल जोरावर सिंह मानसरोवर और कैलाश पर्वत को गुलाबसिंह के राज्य में शामिल करने के लिए तिब्बत की ओर बढ़ा। दिसम्बर 1941 में वह मानसरोवर झील के किनारे लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। उसके बाद तिब्बती सेना लद्दाख की ओर बढ़ने लगी परन्तु वह अपने इस उद्देश्य में सफल नहीं हुई। दो असूज संवत् 1899 तदनुसार 15 सितम्बर 1842 को गुलाबसिंह की सरकार और दलाईलामा की सरकार के बीच एक संधि हुई जिसे लेह की संधि कहा जाता है। इसके अनुसार दलाईलामा की सरकार ने लद्दाख पर गुलाबसिंह का अधिपत्य स्वीकार कर लिया। साथ ही इस संधि के द्वारा दोनों पक्षों ने तिब्बत और लद्दाख की परम्परागत सीमा को मानने और उसका उल्लंघन न करने का वचन दिया।

इस प्रकार महाराजा गुलाबसिंह काश्मीर घाटी को लेने के कई वर्षों पहले लद्दाख पर अधिकार कर चुका था। लद्दाख का काश्मीर घाटी से तब न कोई वास्ता था और न सम्बन्ध।



प्रो० बलराज मधोक

प्रोफेसर बलराज मधोक, लोकमान्य तिलक की भांति भारतीय राजनीति की, उन गिनी-चुनी विभूतियों में से एक हैं, जिन्होंने शिक्षा, साहित्य और राजनीति के क्षेत्र में एक साथ प्रतिष्ठा पाई है। एक प्रखर राष्ट्रवादी, हिन्दुत्ववादी मनीषी और दूरदर्शी राजनेता के रूप में सारा देश उन्हें जानता है।

उन्होंने पशिचिमी पंजाब में स्थित अपने पैतृक गाँव और जम्मू-काश्मीर के लद्दाख क्षेत्र, जहाँ सन् 1920 में उनका जन्म हूआ तथा रियासत के अन्य भागों की भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में अपने संघर्षपूर्ण और उपलब्धिपूर्ण जीवन के 58 वर्षों में, 1947 में काश्मीर पर पाकिस्तानी आक्रमण के समय श्रीनगर की रक्षा एवं रियासत की भारत में विलय की प्रक्रिया, शेखअब्दुल्ला की धोखाधड़ी का पर्दाफाश, जम्मू प्रजा परिषद् का निर्माण, सरदार पटेल, पण्डित नेहरू, डाक्टर अम्बेडकर और डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी के साथ राष्ट्रीय महत्व के सम्वाद और अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् की स्थापना के साथ भारतीय जनसंघ की स्थापना में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। वे 1951 से 1965 तक जनसंघ के अखिल भारतीय मंत्री, 1954 से 1963 तक दिल्ली प्रदेश जनसंघ के अध्यक्ष और 1965 से 1967 और वर्तमान में अखिल भारतीय जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं। वे 1961 में नई दिल्ली से और 1967 में दक्षिण दिल्ली से लोकसभा के सदस्य चुने गये और उन्होंने एक प्रभावशाली तथा स्पष्टवादी सांसद के रूप में ख्याति अर्जित की।

सन 1975 में उनहें मीसाबंदी बनाया गया और वे 18 माह जेल में रहे।

दो उपन्यासों के अतिरिक्त राजनीतिक और सामाजिक विष्यों पर उनकी हिन्दी और अंग्रेजी में तीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित और चर्चित हो चुकी हैं।

काशमीर समस्या को समझने और आंकने व उसका तर्कसंगत, व्यवाहरिक, यथार्थवादी समाधान का प्रस्तुत पुस्तक में लेखक द्वारा प्रयास किया गया है।